जैन पदार्थ-विज्ञान में पुद्गल

लेखक

मोहनलाल बांठिया, बी० काम०

तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह के अभिनन्दन में
प्रकाशित

प्रकाशक

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

३, पोर्च्युगीज चर्च स्ट्रीट

कलकत्ता–१

प्रथमावृत्ति . १५००

मई १९६० ई०

वि० स० २०१७

मूल्य · एक रुपया पच्चीस नये पैसे

मुद्रक

मिश्रा एण्ड कम्पनी

१२, ग्रान्ट लेन,

कलकत्ता–१२

प्रकाशकीय

जैन तत्त्व-ज्ञान माला का यह पहला ग्रंथ है। इस पुस्तक में षट् द्रव्यों में से पुद्गल द्रव्य का सुन्दर विवेचन है। इसके लेखक श्री मोहनलाल बाँठिया, बी० काम, अच्छे विद्वान और परिश्रमी अनुसन्धित्सु हैं। पाठकों के लिए यह पुस्तक अच्छी ज्ञानवर्द्धक साबित होगी। तेरापन्थ द्विशताब्दी समारोह के अभिनन्दन में इस पुस्तक का प्रकाशन महासभा की साहित्य प्रकाशन योजना का एक अग्रगामी पादन्यास है। आशा है पाठक इसका अच्छा स्वागत करेंगे।

तेरा० द्विशताब्दी समारोह व्यवस्था उप-समिति
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता
२५-५-'६०

श्रीचन्द रामपुरिया
व्यवस्थापक
साहित्य-विभाग

भूमिका

जैन दर्शन में षट् द्रव्य कहे गये है—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीवास्तिकाय। द्रव्य का अर्थ है 'सत्' वस्तु अर्थात् वह वस्तु जिसमें अवस्थान्तर भले ही हो पर जो मूलत कभी विनाश को प्राप्त नही होती। इन द्रव्यो का अस्तित्व तीनो काल में होता है। अस्तित्व का अर्थ है अपने स्वभाव व व्यक्तिगत गुण के साथ हमेशा विद्यमान रहना। लोक इन्ही छ द्रव्यो से निष्पन्न माना जाता है। वह षट् द्रव्यात्मक कहा गया है। लोक की सीमा के बाहर अलोक है। वहाँ केवल आकाशास्तिकाय है, अन्य द्रव्य नही।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय सख्या में एक-एक है। पुद्गलास्तिकाय, काल और जीवास्तिकाय अनन्त हैं।

उपर्युक्त द्रव्यो में प्रथम पाँच अजीव है। उनमें चैतन्य नही होता। जीवास्तिकाय चैतन्य द्रव्य है। उसमे ज्ञान, दर्शन होता है।

पाँच अचैतन्य द्रव्यो मे पुद्गलास्तिकाय रूपी है। उसके वर्ण, गध, रस और स्पर्श होते है, अत वह रूपी है—इन्द्रिय-ग्राह्य है। अवशेप अचैतन्य द्रव्य अरूपी है। वे इन्द्रिय-ग्राह्य नही। जीवास्तिकाय भी अरूपी है।

पुद्गलास्तिकाय की रचना अन्य द्रव्यो से भिन्न है। पुद्गल का सूक्ष्म से सूक्ष्म टुकडा, जिनका और खण्ड नही हो सकता, जो

अन्तिम अविभाज्य होता है परमाणु कहलाता है। परमाणुओं में परस्पर मिलने और बिछुडने का सामार्थ्य होता है। इस गलन-मिलन गुण या स्वभाव के कारण परमाणु मिल कर स्कदरूप हो जाते हैं और स्कद मे बिछुडकर पुन परमाणु रूप हो जाते हैं।

पुद्गलास्तिकाय के अतिरिक्त चार अस्तिकायो के खण्ड नही किये जा सकते। वे ऐसे द्रव्य है जिनकी शरीर-रचना में बधन, साध, गाँठ जैसी कोई वस्तु नही होती। जैसे धूप और छाया में साध आदि नही होती वैसे ही ये निरवन्व द्रव्य हैं।

परमाणु पुद्गल द्रव्य की परम सूक्ष्म, अन्तिम, अखण्ड इकाई है। इस इकाई रूप में परमाणु अन्य द्रव्यो के माप का साधन माना जाता है। एक परमाणु जितने स्थान को रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं।

परमाणु मिल कर स्कध रूप धारण करते है। यदि एक पुद्गल का माप निकालना हो तो परमाणु से मापने पर वह असख्यात प्रदेशी होगा। इसी तरह अन्य अस्तिकाय भी परमाणु से मापे जा सकते हैं। इस माप से धर्म, अधर्म, आकाश और जीव क्रमश. असख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेशी हैं।

उपर्युक्त छ द्रव्यो में काल के सिवा बाकी पाँच के साथ 'अस्तिकाय' सज्ञा है। प्रश्न है इन की अस्तिकाय सज्ञा क्यो ? जो द्रव्य अपने गुणो के साथ त्रिकाल में अवस्थित रहता है और जो बहु-प्रदेशी होता है उसे अस्तिकाय कहते हैं। यह ऊपर बताया जा चुका है कि परमाणु के माप से किस तरह धर्म, अधर्म, आकाश,

पुद्‌गल और जीव द्रव्यो के असख्यात या अनन्त प्रदेश होते हैं।

'काल' को अस्तिकाय नही कहा गया, उसका कारण यह है कि वह बहुप्रदेशी द्रव्य नही है। 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' इस त्रिपदी की कसौटी पर वह द्रव्य तो ठहर जाता है क्योकि उसका अस्तित्व है और उसमें उत्पाद और व्यय रूप पर्याय या अवस्थान्तर होता है फिर भी वह अस्तिकाय नही। काल की इकाई 'समय' है। 'समय' से सूक्ष्मतम काल और नही होता। जिस तरह माला का अगुलियो के बीच में रहा हुआ मनका पूर्व के मनका के साथ आबद्ध नही होता और न बाद के मनका के साथ आबद्ध होता है उसी तरह वर्तमान समय अतीत और अनागत समय के साथ आबद्ध नही होता है। इस तरह काल कभी प्रदेशो का समूह नही हो सकता। वह काय-रहित होता है। इसलिए काल द्रव्य 'अस्तिकाय' नही कहलाता।

धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य धूप और छाया की तरह लोक में सर्वत्र विस्तृत हैं। जीव स्वदेह प्रमाण होता है, वह स्वदेह में सर्वत्र फैला होता है। पुद्‌गल द्रव्य भी लोक में सर्वत्र है पर वह धर्म आदि की तरह विस्तीर्ण द्रव्य नही है। काल का क्षेत्र ढाई द्वीप है। वह सारी दिशाओ में वर्तन करता है।

जैन दर्शन के अनुसार लोक अनादि अनन्त है और वह इन्ही षट् द्रव्यो से निर्मित है—निष्पन्न है। इन द्रव्यो की सख्या में हानि-वृद्धि नही होती। लोक के बाहर केवल अकाशास्तिकाय है, अन्य द्रव्य नही।

इस लोक में जो जीव हैं वे असिद्ध कहलाते है। वे अपने शुद्ध स्वरूप मे नही होते, विकृत होते हैं। विकृत का अर्थ यह है कि वे स्वतत्र नहीं होते। चैतन्य होने पर भी जड पुद्गल से वधे हुए होते हैं। इन जीवो के आत्मप्रदेशो में पुद्गल वैसे ही भरे रहते हैं जिस तरह कुप्पी में काजल। इसका परिणाम यह होता है कि जीव का शुद्ध सम्पूर्ण चैतन्य प्रस्फुटित नही होता और अपनी मलिनता के कारण जीव को ससार-भ्रमण करना पडता है—वार-वार जन्म-मरण करना पडता है। जीव तभी शुद्ध चैतन्य रूप में प्रगट होता है जव आत्म-प्रदेशो के साथ वधे हुए कर्म-पुद्गलो से उसका पूर्णत छुटकारा होता है। कर्म-पुद्गल से यह मुक्ति ही जैन धर्म मे मोक्ष कहा गया है।

सासारिक प्राणी पुद्गलो के वधन के कारण उसी प्रकार राग-द्वेष के भावो से तरगित होता रहता है जिस तरह समुद्र का जल उसमें ककड फेंकने से तरगित होता है। राग-द्वेष भाव से तरगित आत्मा नये कर्म-पुद्गलो को ग्रहण करती रहती है। और इस तरह ससार वढता जाता है। नया वधन रोक देने पर ससार नहीं वढता। पुराने वधन को तपादि से दूर कर देने पर आत्मा क्रमश कर्मों से मुक्त होती है।

जीव और पुद्गल गतिशील द्रव्य हैं। उनमे गति की क्षमता या सामर्थ्य है। अवशेष द्रव्यो में गति-सामर्थ्य या गति नही होती। गतिशील द्रव्य जीव और पुद्गल जव गमन करते है तव स्थिर धर्मास्तिकाय उनकी गति में उदासीन सहायक रूप से

काय करती है। गतिशील द्रव्य जीव और पुद्गल जब स्थिर होना चाहते हैं तो स्थिरता प्राप्त करने में उदासीन सहायक स्थिर अधर्मास्तिकाय होती है। आकाश सब द्रव्यों को स्थान देता है। काल सब द्रव्यों पर वर्तन करता है—उनमें नये पुराने का भाव पैदा करता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो गतिशील पुद्गल चचल जीव के प्रदेशों में धर्मास्तिकाय के सहारे पहुँचता है। अधर्मास्तिकाय के सहारे स्थिर होता है। आकाशास्तिकाय के सहारे स्थान पाता है। काल के आधार से स्थिति प्राप्त करता है। यह बधन की प्रक्रिया है। मुक्ति की प्रक्रिया ठीक इसके विपरीत है।

इस तरह यह प्रगट है कि ससार-बधन और ससार-मुक्ति की कडी पुद्गल के अस्तित्व के कारण है।

पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि से पुद्गल का अध्ययन करना जितना महत्वपूर्ण है उतना ही आध्यात्मिक दृष्टि से उसका ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। वैज्ञानिक दृष्टि से पुद्गल अनन्त शक्ति सम्पन्न है। आध्यात्मिक दृष्टि से उसकी आसक्ति पौद्गलिक बधन का कारण है जो परम्परा भव-भ्रमण का कारण होता है।

इस छोटी-सी पुस्तक में पुद्गल का जो विवेचन है वह दोनों दृष्टियों से अध्ययन करने में सहायक होगा। भौतिकवादी वैज्ञानिक को यह जैन-विज्ञान परम्परा पुद्गल विषयक गभीर ज्ञान देगा और आत्मवादी को नाशवान पुद्गल के वास्तविक स्वरूप

की जानकारी।

पुस्तक छोटी होने पर भी इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है और परिश्रमपूर्ण शोध-खोज का परिणाम है। विषय जटिल है पर लेखक की विश्लेषणात्मक पद्धति से वह काफी स्पष्ट हुआ है।

१५, नूरमल लोहिया लेन
कलकत्ता
२५–५–,६०

श्रीचन्द रामपुरिया

अनुक्रमणिका

जैन पदार्थ-विज्ञान में पुद्गल

प्रथम अध्याय

पुद्गल की परिभाषा

"ससार क्या है तथा इसमें क्या है?" इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का विवेचन ससार के प्राय सभी महान् विचारको ने किया है। जैन-तीर्थंकरो ने इस विषय में जो विचारणा या परिकल्पना की है, वह एतद्विषयक सभी विचारणाओ या परिकल्पनाओ से निराली है। जैन-आगमो में इस विषय पर विशद् विवेचन किया गया है। इस तरह का विशद एव सूक्ष्म विवेचन किसी अन्य धर्म, दर्शन या विचारक ने नही किया है। जैन मनीषियो ने प्रश्नोत्तर के रूप में, इस प्रश्न से सम्बन्धित तथा उससे उत्पन्न होनेवाले अधिकाश पहलुओ तथा आशकाओं को सुलझाया है।

जैन-सिद्धान्त के अनुसार लोक—ससार षट् द्रव्यात्मक है[1]। उसके अनुसार इस ससार में आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल, जीव और काल—ये छ द्रव्य है। कोई अन्य द्रव्य या वस्तु नही। इस ससार का माप सर्व दिशा में अनन्तानन्त है तथा इस अनन्तानन्त ससार में सम्पूर्ण भाव से सर्वत्र व्याप्त केवल आकाश द्रव्य ही है।

१—गोयमा! ६ दव्वा पण्णत्ता, तजहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमये य।

वह सम्पूर्ण ससार में सर्वत्र अवगाढ है—फैला हुआ है। आकाश द्रव्य का क्षेत्र सर्वव्यापी है अर्थात् ससार आकाशमय है। इस अनन्तानन्त आकाशमय समार के मध्य भाग में बाकी पाँच द्रव्य भरे हुए हैं[1]। ससार के जिस मध्यवर्त्ती भाग में ये छ द्रव्य है, उस भाग को लोक[2] तथा शेष भाग को, जिसमें केवल आकाश-द्रव्य है, 'अलोक'[3] कहते हैं। सम्पूर्ण ससार गोलाकार है। अलोक मध्य में पोले गोले की तरह है[4]।

आधुनिक विज्ञान ने जैन-विज्ञान कथित इन छ द्रव्यो मे से चार-आकाश, पुद्‌गल, जीव तथा काल को स्वीकार किया है। उसने धर्म तथा अधर्म के सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक निर्णय नही किया है तथा उपर्युक्त चार स्वीकृत द्रव्यो के सिवाय अन्य किसी द्रव्य

१–किमिय भते ! लोएति पव्वुच्चइ ? पचत्थिकाया, एसण एवतिए लोएति पव्वुच्चइ-तजहा-धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए जाव पोग्गलत्थिकाए।

—भगवतीसूत्र १३ ४ १३

२–अनन्तानताकाशद्रव्यस्य मध्यवर्तिनि (लोक) आकाश पूर्वोक्त पञ्चानाम् (द्रव्यानाम्) समुदायस्तदाधारभूत लोकाकाश चेति षड्द्रव्यसमूहो लोको भवति।

—प्रवचनसार अ० २ गा० ३६ की तात्पर्यवृत्ति

३–स्वलक्षण हि लोकस्य षड्द्रव्यसमवायात्मकत्व, अलोकस्य केवल आकाशात्मकत्वम्।

—प्रवचनसार अ० २ गा० ३६ की प्रदीपिकावृत्ति

४–गोयमा ! अलोए-झुसिर गोलसठिए पण्णत्ते।

—भगवतीसूत्र ११ १० १०

के होने का प्ररूपण या निरूपण नही किया है। इन छ द्रव्यों में से हम यहां केवल 'पुद्गल' द्रव्य का अध्ययन करेंगे, प्रथमत जैन-सिद्धान्त के अनुसार, फिर तुलनात्मक तथा समालोचनात्मक दृष्टि से।

१ "पुद्गल" शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

"पुद्गल" शब्द जैन-धर्म का पारिभाषिक शब्द है। यह शब्द बौद्ध-साहित्य में भी व्यवहृत हुआ है लेकिन सर्वथा भिन्नार्थ में[1]। जैन-धर्म का "पुद्गल" आधुनिक विज्ञान के "जड पदार्थ" (matter) शब्द का समवाची है।

"पूरणगलनान्वर्थसंज्ञत्वात् पुद्गला"[2]—पूर्ण होना अर्थात् मिलना, बद्ध होना, गलना अर्थात् पृथक् होना—बिछुडना। जो मिले तथा जुदा हो वह पुद्गल। विष्णु-पुराण में भी कहा है "पूरणात् गलनात् इति पुद्गला परमाणव"[3]—पुद्गल परमाणु मिलते हैं तथा विलग होते हैं। सघबद्ध होना—स्कन्धरूप होना, बिछुडना—पृथक् होना—यह पुद्गल द्रव्य का स्वभाव या प्रकृति है। पुद्गल द्रव्य का यह नामकरण उसके इन्ही गुण के कारण हुआ है।

२ पुद्गल की परिभाषा और व्याख्या

किसी वस्तु के जिस यथातथ्य वर्णन से उस वस्तु का सम्यक्, निरवृत, असन्दिग्ध निश्चय किया जा सके वह यथार्थ वर्णन उस

१—जीव, आत्मन आदि अर्थ में।
२—सनातन जैनग्रन्थमाला का "तत्त्वार्थ राजवार्त्तिकम" पृ १९०
३—न्यायकोष पृ० ५०२

पुद्गल क्या है ? १–द्रव्य है[1], नित्य तथा अवस्थित द्रव्य है[2]।

२–अजीव है[1]।

३–अस्ति है[3]।

पुद्गल कैसा है ? ४–कायवाला है[1], [3]।

५–रूपी है तथैव मूर्त्त है[4]।

६–क्रियावान् है[5]।

७–गलन-मिलनकारी है[6]।

८–परिणामी है[7]।

१–अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला। द्रव्याणि जीवाश्च।
—तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र १, २

२–नित्यावस्थितान्यरूपाणि च। रूपिण पुद्गला।
तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ३, ४

३–पच अत्थिकाया पण्णता-त्तजहा- × × × × पोग्गलत्थिकाए।
—भगवतीसूत्र श० २ उ० १०

४–(क) रूपिण पुद्गला।–तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ४
(ख) पुग्गल मुत्तो रुवादिगुणो।–वृहद् द्रव्य सग्रह गाथा १५ का अश।

५–पुद्गलजीवास्तु क्रियावन्त –तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ६ का भाष्य।

६–पूरणाद्गलनाच्च पुद्गला।–तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र १ पर सिद्धिसेनगणि टीका।

७–परिणामपरिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपर्यायाभ्या कृत्वा, शेपचत्वारि द्रव्याणि विभावव्यजनपर्यायाभावा-न्मुख्यवृत्या पुनरपरिणामीनीति।
—वृहद् द्रव्य सग्रह पृ० ६७ रायचन्द जैन ग्रन्थमाला

पुद्गल कितना है? ९—अनन्त है[1]।

पुद्गल कहाँ है? १०—लोकप्रमाण है[2]।

पुद्गल में परद्रव्य सम्बन्धी क्या गुण है? ११—ग्रहणगुणी है। जीव-ग्राह्य है[3]। जीव का उपकारी है। सुख-दु ख-जीवित-मरण, शरीर-वाक्-मन-प्राणापण इन चार-चार भेदवाले द्विविध उपकारो को करता है[4]।

१—दव्वओण पोग्गलत्थिकाए अणताइ दव्वाइ।
—भगवतीसूत्र श० २ उ० १०

२—खेत्तओ लोएप्पमाणमेत्ते।
—भगवतीसूत्र श० २ उ० १०

३-सकषायत्वाज्जीव कर्मणो योग्यान पुद्गलानादत्ते।
—तत्त्वार्थसूत्र अ० ८ सू० २

४—शरीरवाङ्मन प्राणापाना पुद्गलानाम्, सुखदु ख जीवितमरणोपग्रहाश्च।
—तत्त्वार्थ सूत्र अ० ५ सू० १९

द्वितीय अध्याय

पुद्गल के लक्षणों का विश्लेषण

पुद्गल की सामान्य परिभाषा करते हुए उसके सम्बन्ध में जिन ११ बातो का उल्लेख किया गया है उनकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है

१ पुद्गल द्रव्य है .

द्रव्य किसे कहते है? जिसके गुण और पर्याय हो उसे द्रव्य कहते है[१]। द्रव्य में गुण और पर्याय दोनो का होना आवश्यक है। जो द्रव्य में रहते है, स्वय निर्गुण है, वे ही गुण कहलाते है[२]। शक्ति विशेषो का ही नाम गुण है। लक्षणो को भी गुण कहते है। जिससे वस्तु की पहचान हो वह गुण है। ऐसा कोई द्रव्य नही जिसमें किसी तरह का गुण नही हो। गुण ध्रुव होता है। द्रव्य के गुण सदा द्रव्य में रहते है, सदा युगपद—स्थायीभाव से रहते है। द्रव्यो का स्वरूप गुणो से जाना जाता है।

एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से विभेद उनके कतिपय गुणो की

१—गुणपर्यायवद्द्रव्यम्। —तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ३७
२—द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा। —तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ४०

विभिन्नता से जाना जाता है। 'गुण' शब्द आधुनिक विज्ञान के 'Properties' शब्द का समवाची है। सज्ञान्तर तथा भावान्तर को पर्याय कहते हैं[1]। गुण अविनाशी और सदा सहभावी है तथा पर्याय क्रमभावी है[2]। अत गुण ध्रुव होता है, और पर्याय उत्पादव्यय होता है। इसीसे द्रव्य को उत्पादव्ययध्रौवयुक्त कहा जाता है[3]। वास्तव में गुण और पर्याय एक ही है। गुण का विश्लेपण ही पर्याय है। गुण का क्रमविकास भाव ही पर्याय है। क्रमविकासभाव का पारिभापिक नाम "परिणमन" है। प्रत्येक द्रव्य मे कतिपय गुण क्रमभावी या परिणामी होते है और इम परिणमन शक्ति से द्रव्य की—उस गुण आपेक्षित—मज्ञा या भाव में जो अन्तर या परिवर्तन होता है, उसे पर्याय कहते है। उदाहरण—सोने का ढेला तथा चूडी। मोने का पीत आदि सहभावी गुण सोने के ढेले तथा सोने की चूडी दोनो मे है। आकार (सस्थान) ग्रहण करने का सोने का जो क्रमभावी या परिणामी गुण है उससे सोना कभी ढेला, कभी चूडी का आकार ग्रहण कर सकता है। यह आकार-परिवर्तन परिणमन है तथा आकार-पर्याय है। ढेले का आकार-

---

१—भावान्तर सज्ञान्तर च पर्याय। —तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ३७ का भाष्य।

२—अनन्तास्त्रिकालविषयत्वाद् अपरिमिता ये धर्मा सहभाविन क्रमभाविनश्च पर्याया।—स्याद्वादमजरी श्लोक २२ की व्याख्या।

३—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्।—तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र २६

पर्याय व्यय होकर चूड़ी का आकार-पर्याय-उत्पन्न होता है। इसीसे पर्याय को उत्पादन-व्यय-भावी कहा जाता है। ढेले से चूड़ी होकर भी सुवर्णत्व ध्रुव रहता है। अपने स्वभाव को बिना छोड़े, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित, गुणात्मक, पर्यायसहित जो है उसे द्रव्य कहते हैं।[1]

२ पुद्गल नित्य तथा अवस्थित है

नित्य तथा अवस्थित यह दोनो गुण सभी द्रव्यों में युगपद् स्थायी भाव से रहते हैं। जिसके स्वभाव का व्यय नहीं हो तथा जो सर्वथा विनष्ट नहीं हो, वह नित्य है[2]। जो संख्या में कमते या बढ़ते नहीं है, जो अनादि निधन है, जो सदा स्वस्वरूप में रहते हैं तथा जो न दूसरे को अपने रूप में परिणमाते है। वे अवस्थित हैं[3]।

१—अपरित्यक्तस्वभावेनोत्पादव्ययध्रुवत्वसयुक्तम्।
गुणवच्च सपर्याय यत्तद्द्रव्यमिति ब्रुवति॥
—प्रवचनसार अ० २ गाथा ३

२—तद्भावाव्ययं नित्यम्।—तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ३०

३—अवस्थित ग्रहणादन्यूनाधिकत्वमाविर्भाव्यते, अनादिनिधनेय-ताभ्यां न स्वतत्त्व व्यभिचरन्ति।
—तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ सूत्र ३ सिद्धिसेन गणि टीका

पुद्गल अनन्त अतीत में लगातार था, वर्तमान काल में लगातार है, तथा अनन्त भविष्यत्काल मे लगातार रहेगा[१]। पुद्गल (गुण पर्यायवाला) नित्य तथा अवस्थित द्रव्य है। अत यह कभी सर्वथा नष्ट नही होगा तथा कभी अन्य द्रव्य में परिणत नही होगा[२]।

पुद्गल पुद्गल ही रहेगा। अनन्त अतीतकाल में जितने पुद्गल द्रव्य थे, वर्तमान काल(समय) मे उतने ही है तथा अनन्त आनेवाले काल मे उतने ही रहेंगे। न कभी कोई पुद्गल-द्रव्य विलुप्त हुआ, न वर्तमान समय में विलुप्त हो रहा है तथा न कभी अनागत काल में विलुप्त होगा। अनन्त अतीत मे न कोई नवीन पुद्गल द्रव्य बना था, न वर्तमान समय में कोई नवीन पुद्गल द्रव्य बनता है तथा न अनन्त भविष्यकाल मे कोई नवीन द्रव्य बनेगा। द्रव्यार्थिक नय से पुद्गल सदा नित्य तथा अवस्थित है।

१—पोग्गले अतीतमणत, सासय समय भुवीति वत्तव्व सिया। पोग्गले पडुप्पण्ण, सासय समय भवीति वत्तव्व सिया। पोग्गले अणागयमणत, सासय समय भविस्सतीति वत्तव्व सिया।

—भगवतीसूत्र शतक १ उद्देशक ४

२—न जातु चिदनादिकालप्रसिद्धिवशोपनीता मर्यादामतिक्रामति, स्वलक्षणव्यतिकरो हि निर्भेदताहेतु पदार्थनाम्, अत स्वगुणमपहाय नान्यदीयगुणसम्परिग्रहमेतान्यातिष्ठन्ते, तस्मादवस्थितानीति।

—तत्वार्थसूत्र अ० ५ सू० ३ के भाष्य पर सिद्धिसेन गणि टीका

३ पुद्गल अजीव है :

जिसमें जीवत्व का अभाव हो वह अजीव है। पुद्गल जीव से सर्वथा विरुद्ध जड है, चैतन्यविहीन है, एव उपयोगरहित है। जीव का लक्षण उपयोग कहा गया है[१]। अत पुद्गल उपयोग लक्षण रहित होने के कारण जीव नही है[२]। पुद्गल जीव नही, अजीव है[३]।

४ पुद्गल अस्ति है

सत् है। मरीचिका या माया नही है। कालव्यतिरेक पुद्गलसह पाँच द्रव्यो का "अस्तित्व" ही मूल गुण है[४]। अस्तित्व, विभाव-गुण नही, स्वभाव-गुण है[५]। यह (यानी द्रव्य का अस्तित्व) गुण पर्याय सहित है तथा उत्पादव्ययध्रुवत्व

१—उपयोगो लक्षणम्।—तत्त्वार्थसूत्र अ० २ सूत्र ८

२—जीवादन्योऽजीव XX सतएव वस्तुनोऽभिमत, विधिप्रधानत्वात्, अतस्तुत्यास्तित्वेव, भावेषु चैतन्यनिषेधद्वारेण धर्मादिज्वजीवा इत्यनुशासनम्।

३—जीवो न भवतीत्यजीव।

४—इह विविध लक्षणाना लक्षणमेक सदिति सर्वगत।
—प्रवचनसार अ० २ गाथा ५ पूर्वार्द्ध छाया।

५—अस्तित्व हि किल द्रव्यस्य स्वभाव।—प्रवचनसार अ० २ गा० ४ की प्रदीपिकावृत्ति।

मयुक्त है[1]। पुद्गल अवास्तव नही है। कल्पना मात्र नही है। उपचार से अवतिष्ठित नही है। विद्यमान है। त्रिकालवर्ती अस्ति है[2]।

५ पुद्गल कायवाला है

काल को छोडकर, वाकी पाँच द्रव्य "अस्तिकाय" कहलाते है[3]। चीयते इतिकाय। 'काय' शब्द से शरीर अवयवी ग्रहण होता है। काय से प्रदेश का आशय भी लिया जाता है[4]। जिसमे शरीर की तरह वहुत से अवयव या प्रदेश पाये जायँ, वह कायवाला कहा जाता है[5]। स्कन्ध पुद्गल के एकाधिक अनन्त यावत् अवयवी प्रदेश होते हैं। अत पुद्गल कायवाला है। पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है, लेकिन परमाणु मिलकर वहुप्रदेशी स्कन्ध होता

१—सद्भावो हि स्वभावो गुणै सह पर्ययैश्चित्रै।
द्रव्यस्य सर्वकालमुत्पादव्ययध्रुवत्वै।
—प्रवचनसार अ २ गा ४ की छाया।

२—अस्ति इत्यय निपात कालत्रयाभिधायी।
—भगवतीसूत्र श २ उ १० की टीका में

३—उत्तकालविजुत्तणादव्वा पच अत्थिकायाढु।
—वृहद् द्रव्यसग्रह सूत्र २३

४—काय प्रदेशराशय। —भगवतीसूत्र श २ उ. १० की टीका में

५—काया इव वहु देसा तह्मा या काय अत्थिकाया य।
—वृहद् द्रव्यसग्रह सूत्र २४

है। अत परमाणु पुद्गल को उपचार से काय कहा है[1]।

६ पुद्गल रूपी है[2] तथैव मूर्त है[3] .

रूपादि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण संस्थान। गुणो में परिणमन के कारण पुद्गल रूपी तदर्थ मूर्त कहा जाता है[4]। वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श—ये रूप परिणामी गुण पुद्गल के लक्षण गुण हैं[5-6]।

जो गुण दूसरे में नही हो वह गुण लक्षण-गुण कहलाता है। जिससे लक्ष्य निर्दिष्ट किया जा सके वह लक्षण है[7]। लक्षण-गुण से ही एक वस्तु को दूसरी वस्तु से पृथक् किया जा सकता है। छ द्रव्यो मे केवल पुद्गल ही रूपी है। अन्य द्रव्य रूपी नही है।

१—एयपदेसो वि अणु णाणाखंधप्पदेसदो होदि
वहुदेसी उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥
—बृहद् द्रव्यसग्रह सूत्र २६

२—रूपिण पुद्गला।—तत्त्वार्थसूत्र अ ५ सू ४
रूपं मूर्ति सूत्र ३ के भाष्य में।

३—रूपशब्दस्याऽनेकार्थत्वे मूर्तिपर्यायग्रहण शास्त्रसामर्थ्यात्।
—राजवार्तिक ५ ५ . १

४—रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्ति।
—तत्त्वार्थराजवार्तिक "रूपिण पुद्गला" सूत्र की व्याख्या में।

५—स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गला।
—तत्त्वार्थसूत्र अ ५ सू. २३

६—स्पर्श रस गन्ध वर्ण इत्येवंलक्षणा पुद्गला. भवन्ति।
—उपरोक्त सूत्र का भाष्य।

७—लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणम्। सिद्धिसेन गणि वक्तव्य ॥

जो रूपी है वही मूर्त है। वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श के विशिष्ठ परिणामो से मूर्तित्व होता है[1]।

जो रूपी है वही पुद्गल द्रव्य है[2]। कोई भी पुद्गल अरूपी अर्थात् वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श रहित नही हो सकता है[3]। रूपत्व कभी पुद्गल से अलग या भिन्न नही होता है। जिसमें रूपत्व नही, वह पुद्गल नही है[4]। वर्ण, रस, गन्ध तथा स्पर्श के समवाय को रूपत्व कहते हैं। इन चारो की समष्टि को पुद्गल का रूपत्व-गुण कहते हैं। केवल वर्ण या/तथा सस्थान को रूपत्व या मूर्तत्व नही कहते। जहाँ रूप (वर्ण) है वहाँ स्पर्श, रस तथा गन्ध जरूर है[5]। ऐसा कोई पुद्गल नही है जिसमे इन चारो मे से केवल कोई तीन, कोई दो, या कोई एक ही हो। अन्य द्रव्यो मे इनमे से कोई

१—रूपरस गन्धस्पर्शा एव विशिष्ट परिणामानुगृहीत सतो मूर्तिव्यपदेशभाजो भवन्ति।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ ३ के भाष्य की सिद्धिसेनगणि टीका में।

२—पुद्गला एव रूपिणो भवन्ति।
—तत्त्वार्थसूत्र अ ५ सू ४ का भाष्य।

३—न मूर्तिव्यतिरिकेण पुद्गला सन्ति।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ ४ के भाष्य पर सिद्धिसेनगणि टीका।

४—अरूपा पुद्गला न भवन्ति।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ ४ की सिद्धिसेनगणि टीका।

५—यत्र रूप परिणाम तत्रावश्यन्तया स्पर्शरसगन्धैरपि भाव्यम्, अत सहचरमेतच्चतुष्टयम्।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ ३ की भाष्योपरि सिद्धिसेनगणि टीका।

एक, कोई दो, या कोई तीन या चारों नहीं पाये जा सकते हैं। सब पुद्गलों में—चाहे परमाणु, चाहे स्कन्ध हो—वर्ण, रस, गन्ध तथा स्पर्श ये चारों ही अवश्य होते हैं। पुद्गल की सर्व अवस्थाओं में ये चारों ही पाये जाते हैं—चाहे व्यक्त हो या अव्यक्त। संस्थान भी वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श के सिवाय—मूर्तत्व का एक लक्षण है[1]। संस्थान का अर्थ आकृति या आकार है। संस्थान को पुद्गल का गलन-मिलनकारी स्वभावजन्य कहा जा सकता है।

वर्ण के पाँच भेद काला, नीला, लाल, पीला और सादा।
रस के पाँच भेद तीखा, कड़वा, कषाय, खट्टा और मीठा।
गन्ध के दो भेद सुगन्ध और दुर्गन्ध।
स्पर्श के आठ भेद कठिन, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष[2]।
संस्थान के पाँच भेद परिमण्डल, वृत, त्र्यस्र, चतुरस्र और आयत[3]।

१—रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्त्तिः।
—तत्त्वार्थ राजवार्तिकम् ५.५.१ की व्याख्या में।

२—तत्रस्पर्शोऽष्टविधः कठिनो मृदुर्गुरुर्लघुः शीतउष्णः स्निग्धोरूक्ष इति। रसः पञ्चविधः—तिक्तः कटुः कषायोऽम्लोमधुर इति। गन्धो द्विविधः—सुरभिरसुरभिश्च। वर्णः पञ्चविधः—कृष्णोनीलो लोहितः पीतः शुक्ल इति।
—तत्त्वार्थसूत्र ५.२३ का भाष्य।

३—अथाजीवपरिगृहीत वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्रायतपरिमण्डल भेदात्
—तत्त्वार्थसूत्र ५.२४ भाष्य टीका।

स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण इन चारो का परिणमन सर्व पुद्गलो में होता है[1]।

७ पुद्गल क्रियावान् है[2]

(१) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तसत्[3], यह ससार का प्रथम या मूल नियम कहा जा सकता है[4]। सभी द्रव्य, सहभावी गुणो से ध्रुव है, तथा क्रमभावी पर्यायो से उत्पादव्यय रूप है। गुणो की अपेक्षा से—सभी द्रव्य निष्क्रिय है। द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता एव पर्यायार्थिक नय की गौणता से द्रव्य को निष्क्रिय कहा जा सकता है[5]। पर्यायो के उत्पाद-व्यय की अपेक्षा सभी द्रव्य सक्रिय है। पर्यायार्थिक नय की प्रधानता तथा द्रव्यार्थिक नय की गौणता से

१—स्पर्शादय परमाणुषु स्कन्धेषु च परिणामजा एव भवन्ति।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ २४ का भाष्य।

२—पुद्गल जीवास्तु क्रियावत।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ : ६ का भाष्य।

३—तत्त्वार्थसूत्र ५ २९

४—भगवानपि व्याजहार प्रश्नत्रयमात्रेण द्वादशाङ्ग प्रवचनार्थं सकलवस्तु सग्राहित्वात् प्रथमत. किल गणधरेभ्य—
"उप्पणेतिवा विगमेतिवा धुवेतिवा।"
—तत्त्वार्थसूत्र ५ . ६ सिद्धिसेनगणि टीका।

५—पर्यायार्थिकगुणभावे द्रव्यार्थिकप्रधान्यात् सर्वभावा अनुत्पादा-व्ययदर्शनात् निष्क्रिया नित्याश्च।

द्रव्य को सक्रिय कहा जा सकता है[1]। सभी द्रव्य गुण पर्यायवत् हैं। अतः सभी द्रव्य निष्क्रिय भी हैं, सक्रिय भी हैं। इस प्रकार गुणों की ध्रुवता को निष्क्रियता तथा पर्याय के उत्पाद-व्यय को क्रिया कहा जा सकता है।

(२) पर्याय अनन्त है। अतः क्रिया के भी अनन्त भेद या भाव हैं। साधारण भाव से पर्याय के दो भेद होते हैं —अर्थ-पर्याय और व्यंजन-पर्याय। अर्थ-पर्याय सब द्रव्यों में होता है। द्रव्य के सामान्य परिणामिक भाव से सभी द्रव्यों में एक समयवर्ती अर्थ-पर्याय होती है[2]। अर्थ-पर्याय का उत्पाद-व्यय प्रति समय होता है[3]।

(३) व्यंजन-पर्याय (स्वभाव एवं विभावद्विविध) केवल जीव व पुद्गल में होता है[4]। व्यंजन-पर्याय संसारी जीव तथा पुद्गल के विशेष पारिणामिक भाव तथा परिस्पन्दन निमित्त से होता है। इन पर्यायों की उत्पाद-व्यय क्रिया कभी होती है, कभी नहीं भी होती है। प्रति समय होने का ही इसका नियम नहीं है। प्रति

१—द्रव्यार्थिकगुणभावे पर्यायार्थिकप्रधान्यात् सर्वेभावा उत्पादव्यय दर्शनात् सक्रिया अनित्याश्चेति।

—राजवार्तिकम् ५ ७ २५ उपरोक्त द्वयम्।

२—प्रतिसमयपरिणतिरूपा अर्थपर्याया भण्यन्ते।

३—परिणामात् एकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया।

—प्रवचनसार तात्पर्यवृति अ २ गा ३७

४—धर्माधर्माकाश कालानाम् मुख्य वृत्यंकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया एव जीवपुद्गलानाम् अर्थपर्याया व्यजन पर्यायाश्च।

—प्रवचनसार अ० २ गा० ३७ तात्पर्य वृत्ति

समय हो भी सकती है, नही भी हो सकती हे।

(४) द्रव्य मे दो तरह का भाव बताया गया है —परिस्पन्दात्मक और अपरिस्पन्दात्मक[१]। धर्म, अधर्म तथा आकाश अपरिस्पन्दात्मक है। इनमे परिस्पन्दन करने की शक्ति बिल्कुल नहीं है[२]। जीव स्वभाव से अपरिस्पन्दात्मक है लेकिन जीव मे परिस्पन्दन करने की शक्ति अन्तर्निहित होती है तथा पुद्गल के सयोग से—पौद्गलिक मन, वचन, काय इन तीनो योगो के निमित्त से—जीवात्मा के प्रदेश परिस्पन्दन करते है[३]। पुद्गल अपरिस्पन्दात्मक तथा परिस्पन्दात्मक दोनो स्वभाव का कहा गया है। 'राजवार्त्तिक' में परिस्पन्दन को क्रिया तथा अपरिस्पन्दन को परिणाम कहा है[४]। प्रवचनसार की प्रदीपिका वृति मे परिस्पन्दन को क्रिया तथा परिणाम मात्र (अर्थपर्याय परिणमन) को भाव कहा है[५]। सिद्धसेनगणि ने परिणाम की व्यवस्था में 'परिस्पन्द इतर' भाव को

१—द्रव्यस्य हि भावो द्विविध -परिस्पदात्मक अपरिस्पदात्मकश्च।
—राजवार्तिकम् ५ २२ २१

२—निष्क्रियाणिच तानीति परिस्पंद विमुक्तित.।
—तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकम् ५ ७ . २

३—योग आत्म प्रदेश परिस्पद ।—राजवार्तिकम् २ २५ ५

४—परिस्पदात्मक क्रियेन्याख्याते, इतर परिणाम ।
—राजवार्तिकम् ५ · २२ २७

५—परिणाम मात्र लक्षणोभाव परिस्पदन लक्षणा क्रिया।
—प्रवचनसार २ · ३७ की प्रदीपिका वृति।

परिणाम कहा है[1]।

(५) तत्त्वार्थसूत्र ५।६ के भाष्य में "पुद्गल जीवास्तु क्रियावन्त" इस पद से पुद्गल तथा जीव को क्रियावान् कहा गया है तथा "निष्क्रियाणि" सूत्र से धर्म, अधर्म तथा आकाश को जो निष्क्रिय कहा गया है वह परिस्पन्दनजन्य क्रिया निमित्त से कहा गया है अर्थात् धर्म, अधर्म तथा आकाश यह तीनों परिस्पन्दनजन्य देशान्तर प्राप्ति आदि क्रिया विशेष नहीं कर सकते हैं। उत्पाद-व्ययादि सामान्य क्रिया का प्रतिषेध इस सूत्र में नहीं है[2]। अर्थ-पर्याय का उत्पादव्यय तो इनमें भी होता है। जीवात्मा भी स्वभाव से निष्क्रिय है, क्योंकि अपरिस्पन्दनात्मक है।

कर्म-नोकर्म निमित्त से, कार्माण शरीर सम्बन्ध से जीवात्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है, इसलिए जीव को क्रियावन्त कहा गया है[3]। अष्टविधकर्म-क्षय हो जाने से कार्माण शरीर का

१—द्रव्यस्य स्वजात्यपरित्यागेन परिस्पदेतर प्रयोगज पर्याय-स्वभाव परिणाम।

२—पुद्गल जीववर्तिनी या विशेष क्रिया देशान्तर प्राप्ति लक्षणास्या: प्रतिषेधोऽयम्, नोत्पादादि सामान्य क्रियाया
—तत्त्वार्थसूत्र ५ . ६ की सिद्धिसेनीय टीका में।

३—तत्त्वार्थ राजवार्तिकम् ५वा अध्याय ७वें सूत्र के १८वें पद की व्याख्या में।
कार्मण शरीरालंबनात्मप्रदेश परिस्पदन रूपा क्रिया।
—तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकं २ : २५

वियोग घटने से जीवात्मा "अपरिस्पन्दात्मक निष्क्रिय" हो जाता है। कार्माण शरीर विमुक्त-अशरीरी-जीवात्मा के स्वाभाविक ऊर्ध्व गति होती है[1]। उसीसे जीवात्मा सिद्ध स्थान में पहुँचती है। सक्रिय जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती है। मुक्त जीवो मे प्रदेश सकोच आदि जो परिस्पन्दात्मक-क्रिया होती है उसे पूर्व प्रयोग से उत्पन्न कहा जाता है। मुक्त जीवो में अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अचिन्त्य सुखानुभव का अर्थ पर्याय रूप उत्पाद-व्यय तो प्रति समय होता ही है। जब तक जीवात्मा सक्रिय है तब तक वह मोक्ष नही पा सकती क्योकि जब तक जीवात्मा क्रिया करती रहती है तब तक जीवात्मा के कर्म का पुद्गल के साथ बन्धन होता रहता है[2]।

(६) क्रिया को परिस्पन्दन लक्षणवाली कहा गया है[3]। परिस्पन्दन पुद्गल का स्वभाव है। परिस्पन्दन स्वभाव से ही पुद्गल मे क्रिया होती है। परिस्पन्दन शक्ति (गुण) से ही पुद्गल क्रिया में समर्थ है[4]। अत पुद्गल क्रियावन्त है। पुद्गल स्वसामर्थ्य से

१–भगवतीसूत्र

२–जाव चरण भते! अय जीवे एयात वेयति चलति फदति ताव चरण णाणावरणिज्जेण जाव अतराएण बज्झवित्ति? हता गोयमा।।

३–परिस्पदन लक्षणा क्रिया—प्रवचनसार २ · ३७ की प्रदीपिका वृति।

४–प्रवचनसार २ ३७ की प्रदीपिका वृति।

सक्रिय हैं'। आभ्यन्तर में क्रिया—परिणामशक्तियुक्त है। पुद्गल सर्वथा अचल, स्थिर, निष्क्रिय नहीं है। पुद्गल सर्वक्षेत्र, सर्वकाल, सर्व अवस्था में क्रियावान् ही हो, ऐसा भी नहीं है। कभी क्रिया करता है, कभी नहीं भी करता। एक आकाश प्रदेश में स्थिर रहकर भी, पुद्गल-क्रिया (स्पंदन-क्रिया) करता है'। परिस्पन्दन-जनित क्रियायें निरन्तर नहीं आकस्मिक होती हैं।

प्रथमतः क्रिया के अनन्त पर्यायों की अपेक्षा, अनन्त भेद हो सकते हैं। सामान्यतः क्रिया के अनेक भेद होते हैं' लेकिन विशेष अपेक्षाओं से निम्नलिखित भेद हो सकते हैं

(क) निमित्त-अपेक्षा से'—(१) वैस्रसिक और (२) प्रायोगिक।

आभ्यन्तर क्रिया परिणामयुक्त पुद्गल में जो क्रिया स्वतः या अन्य पुद्गल के सहयोग से होती है उसे वैस्रसिक तथा अन्य द्रव्य

१—सामर्थ्यात् सक्रियौ जीव पुद्गलानिति निश्चय।
—तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकम् ५.७ २

२—परमाणु पोग्गले-सिय एयति, वेयति, जाव-परिणति, सिय णो एयति जाव णोपरिणति। —भगवतीसूत्र ५ ७

३—एगपएसोगाढे पोग्गले सेए तम्मि वा ठाणे, अन्नम्मि वा ठाणे, जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइ भाग-चिर होइ। —भगवतीसूत्र ५ ७

४—क्रियानेक प्रकारा हि पुद्गलानामिवात्मना।
—तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकम् ७ ४६

५—पुद्गलानामपि द्विविधा क्रिया विस्रसा प्रयोगनिमित्ताच।
—तत्त्वार्थ राजवार्तिकम् ५ ७ १७

यानी जीव के द्वारा पुद्गल में जो क्रिया होती है उसे प्रायोगिक कहते हैं।

(ख) स्वरूप-अपेक्षा से—(१) गति (एक क्षेत्रस्थित गति और देशान्तर प्राप्ति—क्षेत्रात्क्षेत्रान्तर—गति) और (२) वन्ध भेद।

'भगवतीसूत्र' में एक क्षेत्रस्थित गति (क्रिया) के लिए 'एअई' (सस्कृत 'एजते', अर्थ कम्पन) शब्द का प्रयोग हुआ है। इस क्रिया के दो भेद हैं—समिति और विविध।

देशान्तर प्राप्ति गति के कुछ भेद इस प्रकार हैं (१) अनुश्रेणी तथा विश्रेणी, अविग्रहा तथा विग्रहा और ऋजु तथा कुटिला; (२) प्रतिघाती तथा अप्रतिघाती, (३) स्पृष्ट तथा अस्पृष्ट, और (४) ऊर्ध्व-अध –तिर्यग्।

क्रिया के (ससारी जीव की क्रिया के रूप में) कुछ भेद 'भगवती' सूत्र मे इस प्रकार कहे गये हैं —(१) समिअ एअइ (समित कम्पन), (२) वेअई (विविध कम्पन), (३) चलइ (चलना-गमन), (४) फन्दइ (स्पन्दन), ५ घट्टइ (सघटन), (६) क्षुब्यई (प्रवलतापूर्वक प्रवेश करना) और (७) उदीरइ (प्रवलतापूर्वक प्रेरण—पदार्थान्तर प्रतिपादन)।

क्रिया अनेक प्रकार की है। अभयदेव सूरि ने 'भगवती' सूत्र के शतक दूसरे उद्देश्य तीसरे (जीव की क्रियाओ के वर्णन) की टीका में अन्यान्य क्रियाओं का भेद सग्रह करने को कहा है।

गति क्रिया के कुछ नियम इस प्रकार है —

(१) अनुश्रेणि गति ,

(२) एकसमयो विग्रह, लोकातप्रापिणि अपि,
(३) परमाणेरनियता,
(४) चाल (क) जघन्य—एक समय में एक प्रदेश (ख) उत्कृष्ट—एक समय में लोकान्त से लोकान्त।
(५) कम्पन क्रियाकाल—(क) जघन्य—एक समय। (ख) उत्कृष्ट—अविलि के असखेय भाग, और
(६) निष्कम्प (निष्क्रिय) काल—(क) जघन्य—एक समय। (ख) उत्कृष्ट—असख्येय काल।

नियम सामान्य से पुद्गल की "देशान्तर प्रापिणि गति" अनुश्रेणी होती है। लेकिन प्रयोग परिणामवशात् विश्रेणी भी हो सकती है। पुद्गल की लोकान्तप्रापिणि गति नियम से अनुश्रेणी ही होती है। (देखो तत्वार्थ सूत्र अ २ सूत्र २७ तथा २९, तथा २७ की सिद्धसेन गणि टीका। पुद्गलानामपि गति स्यितीति।)

८ पुद्गल गलन मिलनकारी है.

(१) पूरण (मिलन) तथा गलन स्वभाव के कारण ही पुद्गल का नाम पुद्गल हुआ है[१]। स्वभाव तथा क्रिया के अनुसार वस्तु का नाम रखा भी जाता है[२]। पूरण का अर्थ मिलना और

१—पुद्गलशब्दस्यार्थो निर्दिष्ट पुगिलनात् पूरणगलनाद्वापुद्गल इति। —राजवार्तिकम् ५·१९.४०
२—पूर्यन्ते गलन्ति च पुद्गला धातोस्तदर्थातिशयेन योग मयुर भ्रमरादिवत्। —श्रुतसागरी वृति।

गलन का अर्थ अलग होना है। दूसरे शब्दों में, पुद्गल सघबद्ध होता है तथा फिर अलग होता है। पुद्गल का प्रथम (कारण) स्वरूप परमाणु है[1]। एक परमाणु पुद्गल का दूसरे परमाणु पुद्गल के साथ स्पर्श होने से कितने ही नियमों में अनुवर्ती होकर कभी सघबद्ध (एकीभाव) होता है तथा सघबद्ध होकर फिर कभी भिन्न होता है।

इस प्रकार उन्हीं (सघात भेदादि स्निग्ध रूक्षादि प्रयोग विस्रसादि) नियमों के अनुवर्ती होकर एकाधिक अनन्त तक परमाणु पद्गलों के साथ सघबद्ध (एकभाव) होता है अथवा सघबद्ध अवस्था से भेद होता है। परमाणु पुद्गलों का इस प्रकार बद्ध होना तथा भेद होना पुद्गल के पूरण-गलन स्वभाव से होता है। परमाणु पुद्गल इस प्रकार बद्ध होकर एकत्व रूप परिणमन करते हैं। इस एकभाव रूप का नाम स्कन्ध है[2], स्कन्ध समवाची है।

परमाणु पुद्गल की तरह, एक स्कन्ध का दूसरे एक या एकाधिक स्कन्ध के साथ बन्धन हो सकता है। उन्ही नियमों के अनुवर्ती स्कन्ध का भेद होने से केवल परमाणु रूप में ही पृथक्-करण नहीं होता, केवल स्कन्ध रूप में भी पृथक्करण हो सकता है तथा स्कन्ध एव परमाणु ऐसे मिश्र रूप में भी पृथक्करण हो सकता

१—कारण भेद तदन्त्य सूक्ष्मो नित्यश्चभवति परमाणु।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ २५ का भाष्य।

२—परिप्राप्तबन्ध परिणामा स्कधा।
—राजवार्तिकम् ५ . २५ १६

पुद्गल से, रूक्ष-स्पर्श पुद्गल का रूक्ष-स्पर्श पुद्गल से बन्धन होता है।

स्पर्श-गुण के भेदो से पुद्गल के स्निग्ध तथा रूक्ष-गुण होते हैं। इन स्निग्ध-रूक्ष स्पर्श-गुणो में तारतम्यता होती है अर्थात् स्निग्ध-गुण की स्निग्धता-शक्ति में कमी-बेसी होती है। सर्व परमाणु पुद्गलो की स्निग्धता या रूक्षता एक समान नही होती है। अविभाग परिच्छेद शक्ति को 'गुण' व अश कहते है। पुद्गल परमाणु में स्निग्धता या रूक्षता की तीव्रता या माणता इस "निर्विभागी अश" के पूर्णक गुणनफलो से होती है। जैसे १ अश स्निग्धता, २ अश स्निग्धता, २५ अश स्निग्धता इत्यादि अनन्त अश तक। इस अश का भिन्न नही होता। इसलिए परमाणु पुद्गल में डेढ अश, २½ अश, ४½ अश इत्यादि स्निग्धता या रूक्षता नही होती है।

उपर्युक्त तीन बन्धन योग्यता नियम 'तत्त्वार्थ सूत्र' के ३३।३४। ३५वें सूत्रो में (पचम अध्याय) में अवस्थापित किये गये है। इन तीन बन्धन योग्यता नियमो के उपनियम या विश्लेषण, नियमो का विवेचन अन्य अध्याय में आगे होगा।

बन्ध होने से दो या अधिक अनन्त तक परमाणु पुद्गल एक आकाश-प्रदेश में भी रह सकते है या दो प्रदेश मे या दो प्रदेश से अधिक असख्य प्रदेशो में अवगाह कर सकते हैं। लेकिन बन्धन प्राप्त परमाणु पुद्गल निज की सख्या से अधिक प्रदेश में अवगाह नही कर सकते। अनन्त परमाणुओ का परिप्राप्त बन्ध परिणाम-स्कन्ध असख्य प्रदेश से अधिक प्रदेशी नही हो सकता है।

यह लक्ष्य रखने की वस्तु है कि अनेक परमाणु पुद्गल विना बन्ध परिणाम को प्राप्त हुए भी एक आकाश क्षेत्र में एक काल में स्पृश या अस्पृश होकर रह सकते हैं।

बन्ध दो प्रकार का होता है—प्रायोगिक और विस्रसा। विस्रसा के दो भेद होते हैं—सादि और अनादि। अनादि विस्रसा धर्म, अधर्म तथा आकाश का होता है। अन्य दृष्टि से बन्ध के और दो भेद होते हैं—देश-बन्ध और सर्व-बन्ध। एक प्रदेश का दूसरे प्रदेशो के साथ सम्बन्ध देश-बन्ध है। एक प्रदेश में दूसरे प्रदेशों का समा जाना तथा एक-प्रदेश-रूप हो जाना सर्व-बन्ध है। सादि विस्रसा बन्ध तीन प्रकार का होता है—बंध प्रत्ययिक, भाजनप्रत्ययिक तथा परिणामप्रत्ययिक। रूक्ष-स्निग्ध गुणो के कारण जो बन्धन होता है वह प्रत्ययिक है। भाजन आधार के निमित्त जो बन्धन होता है वह भाजनप्रत्ययिक है। उदाहरण—एक बरतन (भाजन) में रही पुरानी शराब का सघट्ट होना। परिणाम प्रत्ययिक-परिणमन के निमित्त जो बन्धन होता है वह परिणाम प्रत्ययिक है (देखो भगवती सूत्रशतक ८ उद्देश्य ९)

भेद पाँच तरह से होता है—(१) खण्ड, (२) प्रतर, (३) चूर्णिका, (४) अनुतटिका तथा (५) उत्करिका। एकत्व परिणित द्रव्य के विश्लेषण को भेद कहते हैं।

९ पुद्गल परिणामी है

पुद्गल परिणमन करता है। पुद्गलके परिणाम होता

है। एक अवस्था (पर्याय) को छोडकर दूसरी अवस्था (पर्याय) को प्राप्त करने को परिणमन कहते है। कोई द्रव्य न तो सर्वथा नित्य है, न सर्वथा विनाशी है, इसलिए प्रत्येक द्रव्य का परिणाम स्वीकार करना इप्ट है[१]। पातजलयोग के टीकाकार व्यास ने भी कहा है —"अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्व धर्म निवृतौ धर्मान्तरोत्पत्ति परिणाम"—अवस्थित द्रव्य के प्रथम धर्म के नाश होने पर दूसरे धर्म की उत्पत्ति को परिणाम कहते है। द्रव्य की निज की जाति या निज के स्वभाव को छोडे विना प्रयोग या विस्रसा से उद्भावित विकार को परिणाम कहते हैं[२]। परिणाम से क्रिया को अलग दिखाने के लिए—सिद्धसेन गणि ने—परिस्पन्दन इतर प्रयोगज पर्याय स्वभाव को परिणाम कहा है[३]। 'तत्त्वार्थसूत्र' में द्रव्यो के निज-निज के स्वभाव में वर्तने को परिणाम कहा है[४]। 'भगवती' सूत्र मे पुद्गल के परिणाम पॉच तरह के वताये गये है[५] —वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श तथा सस्थान, जो पुद्गल को रूपी वनाते है।

१–परिणामोऽवस्थान्तर गमन न च सर्वथा ह्यवस्थानम्। न च सर्वथा विनाश परिणामस्तद्विदाभिष्ट।—स्याद्वाद मजरी।

२–द्रव्यस्य स्वजात्यपरित्यागेन प्रयोग विस्रसा लक्षणोविकार. परिणाम। —राजवार्त्तिकम् ५ २२ · १०

३–द्रव्यस्य स्वजात्यापरित्यागेन परिस्पदेतरप्रयोगजपर्याय स्वभाव· परिणाम। —तत्त्वार्थसूत्र अ ५ सू २२ सिद्धिसेन गणि।

४–तद्भाव परिणाम।—तत्त्वार्थसूत्र ५ ४२

५–पचविहे पोग्गल परिणामे पण्णत्ते-तजहा-वन्न, गन्ध, रस, फास, संठाण परिणामे। —भगवतीसूत्र श ८ उ १०

'प्रज्ञापना' सूत्र में अजीव के दस परिणाम बताये है जो सब पुद्गल मे लागू होते है। इन दस में ५ तो उपरोक्त 'भगवती' सूत्र में कथित (वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और सस्थान) ही है तथा अवशेष इस प्रकार है —बन्ध, भेद, गति, शब्द तथा अगुरु-लघु।

काल की अपेक्षा से परिणाम बताया गया है अनादि, सादि[1]। पुद्गलो का परिणाम आदिमान है[2]। पुद्गल परमाणु स्वअवस्था में गति तथा अगुरु-लघु यह दो परिणमन ही करेगा। अन्य परमाणु के या स्कन्ध के साथ बन्ध होने से समगुण वाला समगुण को लेकिन विसदृश को परिणमन कर सकता है। अधिक गुणवाला हीन गुणवाले को परिणमन करेगा[3]। पुद्गल का आदिमान परिणाम अनेक प्रकार का है[4]। परिणाम मे निमित्त अपेक्षा से तीन भेद हैं—प्रयोग परिणति, मिश्र परिणति और विस्रसा परिणति[5]।

१० पुद्गल अनन्त है

पुद्गल का प्रथम स्वरूप परमाणु है, जो अनन्त है। अत

१—अनादिरादिमाश्च।—तत्त्वार्थसूत्र ५ ४२
२—रूपिष्वादिमान्। —तत्त्वार्थसूत्र ५ ४३
३—बधे समाधिकौ परिणामिकौ।—तत्त्वार्थसूत्र ५ ३६
४—रूपिषु द्रव्येषु आदिमान् परिणामोऽनेकविध।
—तत्त्वार्थसूत्र ५ ४३ का भाष्य।
५—तिविहा पोग्गला पण्णता-पओगपरिणया, मीससा परिणया, विससा परिणया। —भगवतीसूत्र श ८ उ १

द्रव्य की अपेक्षा से पुद्गल अनन्त है। जीव से पुद्गल अनन्त गुण है। दो, दस, संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणुओं का परस्पर में बन्धन होकर जो स्कन्ध बनते हैं, वे स्कन्ध भी अनन्त हैं।

११ · पुद्गल लोक प्रमाण है

पुद्गल लोक प्रमाण है अर्थात् पुद्गल लोक मे ही है, तथा परमाणु अनन्त है। अत द्रव्य की अपेक्षा पुद्गल अनन्त हैं। जीव से पुद्गल अनन्त गुण है। दो, दस, संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणुओं का परस्पर में बन्धन होकर जो स्कन्ध बनते हैं वे स्कन्ध भी अनन्त हैं।

१२ पुद्गल जीव-ग्राह्य है

जीव द्वारा ग्रहण होना यह पुद्गल का लक्षण है। पुद्गल में जीव को ग्रहण करने की कोई शक्ति या गुण नही है, केवल जीव द्वारा ग्रहित होने का गुण है। जीव ही पुद्गल को आकर्षित करके ग्रहण करता है तथा ग्रहण करके पुद्गल के साथ बन्धन को प्राप्त होता है। जीव का यह पुद्गल ग्रहण स्वक्षेत्र स्थित पुद्गलो का ही होता है अन्य क्षेत्र में स्थित पुद्गलो का नही। जीव का यह पुद्गल ग्रहण जीव के अपने कापायिक परिणामो से होता है। सर्व जीव पुद्गल को ग्रहण नही करते हैं केवल संसारी जीव-सकषायी

यानी कापायिक परिणामो से युक्त होने के कारण——कर्म-योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है।

पुद्गलो के (मन, वचन, काय योग रूप पुद्गलो के) सयोग से और भी कर्म-योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है। दूसरे शब्दो में जीव पुद्गल को ग्रहण करके ग्रहीत पुद्गलो के साथ वन्धन को प्राप्त होकर——उन पुद्गलो की मन, वचन, काया रूप में भी परिणमन करता है तथा फिर मन, वचन, काय योग परिणत पुद्गलो के सयोग से जीव और कर्म-योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है[11]। कर्म-योग्य पुद्गल ही जीव द्वारा ग्रहीत होते हैं। सब तरह के पुद्गल जीव द्वारा ग्रहीत नही होते हैं।

परमाणु रूप में पुद्गल जीव द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता है। सब तरह की स्कन्ध अवस्था में भी नही। पुद्गल स्कन्धो के समास में जो २२ भेद हैं उन्ही भेदो में कार्माण-वर्गणा तथा नोकार्माण-वर्गणा नाम के जो भेद हैं, वे ही पुद्गल-स्कन्ध जीव के द्वारा ग्रहीत होते हैं। जिन पुद्गल-स्कन्धो से (वर्गणाओ से) ज्ञानावरणादिक आठ कर्म बनते है उनको कार्माण-वर्गणा-स्कन्ध कहते हैं। जिन पुद्गल-स्कन्धो से शरीर-पर्याप्ति तथा प्राण बनते हैं उनको नोकर्म-वर्गणा-स्कन्ध कहते हैं। नोकर्म-वर्गणा-स्कन्धो के चार भेद हैं——(१) आहार-वर्गणा, (२) भाषा-वर्गणा, (३) मनो-वर्गणा तथा (४) तेजस्-वर्गणा। इन कर्म-नोकर्म योग्य पुद्गल वर्गणाओ से ससारी जीव के पाँच शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस, कार्माण), वचन तथा प्राणापान बनते

है। कार्मण-वर्गणा से कार्माण शरीर बनता है। आहार-वर्गणा से औदारिक, वैक्रिय, आहारिक शरीर तथा प्राण-अपान बनता है। भाषा-वर्गणा से वचन बनता है। मनो-वर्गणा से मन बनता है। तेजस-वर्गणा से तेजस-शरीर बनता है।

इस तरह पुद्गल जीव द्वारा ग्रहीत होकर ससारी जीव का चार प्रकार का उपकार करता है अर्थात् ससारी जीव के शरीर, वचन, मन और प्राणापान रूप में परिणत होकर जीव के काम आता है, अत उपकार करता है। इस प्रकार शरीरादि रूप में परिणत होकर पुद्गल चार प्रकार से उपग्रह के रूप में जीव का और भी उपकार करता है। चार उपग्रह इस प्रकार है —सुख उपग्रह, दु ख उपग्रह, जीवित उपग्रह और मरण उपग्रह। जो ग्रहीत पुद्गल इष्ट हो उनसे जीव को सुख होता है। जो पुद्गल अनिष्ट हो उनसे जीव को दु ख होता है। जिन (यथा स्नान भोजनादि में व्यवहृत) पुद्गलो से आयु का अनपवर्तन हो वे जीवित उपग्रह -उपकार करते हैं अर्थात् जीव के वर्तमान शरीर से जीव का सम्बन्ध चालू रखने में सहायता करते हैं। जिन पुद्गलो से (यथा विप-शस्त्र अग्नि आदि से) आयु का अपवर्तन हो वे पुद्गल मरण उपगह -उपकार करते हैं अर्थात् जीव के वर्तमान शरीर से जीव का सम्बन्ध-विच्छेद करते हैं।

जीव के द्वारा ग्रहीत होने पर, पुद्गल का जीव के साथ जो सम्बन्ध स्थापित होता है वह जीव तथा पुद्गल का सम्बन्ध घनिष्ट है, गाढतर है, स्पृष्ट है, स्नेह से प्रतिवद्ध है, समुदाय रूप है।

अर्थात् ससारी जीव तथा पुद्गल परस्पर में घनिष्ट भाव से (अन्नमन्नवद्धा) वद्ध हैं, गाढतर भाव से (लोलीभावगता) वद्ध हैं, (अन्नमन्न पुट्ठा) सर्व स्पृष्ट हैं, सर्वदेश में वद्ध (अन्नमन्न ओगाढा) हैं, स्नेह से प्रतिवद्ध (अन्नमन्न मिणेह पडिवद्धा) हैं तथा परस्पर में जीव तथा ग्रहीत पुद्गल समुदाय रूपमें रहते हैं (अन्नमन्न घडताए चिठ्ठति)।

पुद्गल जीव के द्वारा ग्रहीत होकर ही नही रह जाता है। ग्रहीत होकर वह जीव के साथ वन्ध को प्राप्त होता है तथा परिणाम को प्राप्त होता है। जीव के साथ उसका यह वन्ध चार तरह का होता है —प्रकृति वन्ध, स्थिति वन्ध, अनुभाव वन्ध तथा प्रदेश वन्ध। ग्रहण की हुई कार्मण-वर्गणाओ में अपने-अपने योग्य स्वभाव या प्रकृति के पडने को प्रकृति वन्ध कहते हैं। जिस कर्म-योग्य पुद्गल की जैसी प्रकृति, आवरण, इष्ट, अनिष्ट, अन्तराय आदि की प्रकृति होती है वह उसीके अनुसार आत्मा के गुणो की घात आदि रूप परिणमन किया करता है। एक समय में वॅधनेवाले कर्म-योग्य पुद्गल आत्मा-जीव के साथ कवतक सम्वन्ध रखेंगे, ऐसे काल परिमाण को स्थिति कहते है। उन वॅधनेवाले पुद्गलो में स्थिति वॅध जाने को स्थिति वन्ध कहते हैं। वॅधने वाले कर्म-योग्य पुद्गलो में फल देने की शक्ति के तारतम्य के पडने को अनुभाव या अनुभाग वन्ध कहते हैं। वॅधनेवाले कर्म-योग्य पुद्गलो की वर्गणाओ का जीवात्मा के प्रदेशो के साथ जो वन्ध होता है, उसे प्रदेश वन्ध कहते हैं।

यह जीवात्मा के प्रदेशो के साथ कर्मयोग्य पुद्गलो की वर्गणाओ

का प्रदेश वन्ध आठ प्रकार का होता है—यथा —(१) नाम प्रत्यय, (२) सर्वत, (३) योग विशेपात्, (४) सूक्ष्म, (५) एकक्षेत्र अवगाढ, (६) स्थित, (७) सर्वात्मप्रदेशी तथा (८) अनन्तानन्त प्रदेशी।

जिस नाम की कर्म प्रकृति का प्रदेश वन्धन हो वह उस नाम का प्रदेश वन्धन होता है। ऊर्ध्व-अध -तिर्यक् सर्व दिशाओ से जीव पुद्गल को ग्रहण करता है। अत इस अपेक्षा से जीव पुद्गल के प्रदेश वन्धन को सर्वत प्रदेश वन्धन कहते है। मन, वचन, काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशो का परिस्पन्दन होता है, इसे योग कहते है। इस योग की विशेष चेष्टा तथा तीव्र-मन्द आदिक परिणाम से जो प्रदेश वन्धन होता है उसे योग विशेपात् प्रदेश वन्धन कहते है। सूक्ष्म परिणामवाले कर्मयोग्य पुद्गलो का ही जीवात्मा के प्रदेशो के साथ वन्धन होता है। इस अपेक्षा से सूक्ष्म प्रदेश वन्धन कहा जाता है। एक आकाश प्रदेश में अवस्थित पुद्गलो तथा जीव का वन्धन होता है तथा वन्धन होकर जीव पुद्गल एक ही क्षेत्र में अवगाह करनेवाले होते है। अत इस अपेक्षा से एक क्षेत्र अवगाह प्रदेश वन्धन कहा जाता है। स्थित पुद्गल कर्म-नोकर्म-वर्गणाओ के साथ ही जीव का वन्धन होता है। गतिमान पुद्गलो के साथ जीव का वन्धन नही होता है। इस अपेक्षा से स्थित प्रदेश वन्धन होता है। सर्वात्म प्रदेश से सर्व प्रकृति के पुद्गलो का आत्मा के सर्व प्रदेशो से वन्धन होता है इस अपेक्षा से सर्वात्मप्रदेशी प्रदेश वन्धन कहते है। अनन्त प्रदेशी पुद्गल स्कन्ध ऐसे अनन्त स्कन्धो

का आत्मा के एक ही प्रदेश के साथ वन्धन होता है। इस अपेक्षा से अनन्तानन्त प्रदेशी वन्ध कहते है।

जीव को छोडकर अन्य चार द्रव्यो का कोई उपकार पुद्गल नही करता है। अन्य द्रव्यो से उपकार ग्रहण करता है। आकाश से अवगाह में, धर्म से क्रिया या गति में, अधर्म से स्थित या निष्कम्प होने में, तथा काल से परिणमन में उपकार ग्रहण करता है। क्योंकि सर्व परिणमन या क्रिया समय सापेक्ष है। उपचार से यह कहा जा सकता है कि उपकार ग्रहण करके पुद्गल इन चार द्रव्यो को स्व-स्वभाव में परिणमन करने में सहाय करता है। अन्य द्रव्यो का पुद्गल को यह (अवगाहनादि) उपकार-सहकार सक्रिय नही है। वल्कि पुद्गल निज के परिणमन के निमित्त उनके उपकार या सहकार को ग्रहण करता है।

चय, उपचय, अपचय, आयु, अन्तरकाल, अगुरुलघु, सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म-बादर भेद-उपभेद इत्यादि विषयो को हमने परिभाषा में नही रखा है उनका विवेचन पीछे करेंगे।

पुद्गल के उदाहरण

इस परिभाषा की कसौटी पर कसे हुए कुछ पुद्गलो के उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। हम सामान्य उदाहरणो को नही दे रहे हैं वल्कि वे ही उदाहरण दे रहे है जिन पुद्गलो को अतीत में अन्य धर्मों ने पुद्गल वोलकर मान्य नही किया था वल्कि आधुनिक-

विज्ञान ने जिनमें से कुछ को पौद्गलिक वस्तुओ के रूप में ग्रहण कर लिया है। उदाहरण —

(१) मन, (२) शब्द, (३) तम, (४) छाया, (५) ताप-आताप,(६)उद्योत–प्रकाश, (७) विद्युत, (८) उष्ण रश्मि, और (९) शीत रश्मि। शेष दोनो तेजस् लब्धि शरीर के भेद हैं। ये सब पौद्गलिक हैं। इनमें से मन को आधुनिक विज्ञान ने पौद्गलिक वोलकर घोपित नही किया है। क्योकि मन की गुण-दोष विचारणिका सम्प्रवारणा को पौद्गलिक मानने में आधुनिक विज्ञान को निश्चित प्रमाण नही मिला है। यह वात उल्लेख योग्य है कि आधुनिक विज्ञान मन–चेतना को अभी तक विभिन्न गण्य करता है।

अन्य द्रव्य और पुद्गल के गुण

पुद्गल की परिभाषा में दिये गये गुणो में से[१,२] —

क—प्रथम गुण. द्रव्य-नित्य-अवस्थित। सभी द्रव्यो में

१–परिणामी जीव-मुत्त सपदेस एय-खेत्त-किरियाय णिच्च कारण-कत्ता-सव्वगदमिदरहियंपवेसे ॥

दुण्णिय-एय-एय-पच-त्तिय-एय-दुण्णि-चउरोय पच य एयं-एयं-एदेसं-एय-उत्तर-णेय ॥

—नवतत्त्व में तथा वृहद् द्रव्यसग्रह में चूलिका रूप में।

२–वृहद् द्रव्यसंग्रह में दी हुई उपरोक्त चूलिका की व्याख्या (संस्कृत) देखें।

पाया जाता है।

ख—दूसरा गुण अजीव। आकाश, धर्म, अधर्म तथा काल मे भी पाया जाता है।

ग—तीसरा-चौथा गुण अस्तिकाय। काल को छोड कर बाकी पाँच द्रव्यो में पाया जाता है।

घ—छठा गुण क्रियावान्। जीव में भी पाया जाता है।

च—आठवाँ गुण परिणामी। जीव और पुद्गलो में कहा गया है।

छ—नवाँ गुण अनन्त द्रव्य अपेक्षा। जीव भी द्रव्य-अपेक्षा से अनन्त है।

ज—दसवाँ गुण लोक प्रमाण। धर्म, अधर्म, जीव भी लोकप्रमाण है।

झ—पाँचवाँ गुण रूपी। केवल पुद्गल में ही होता है।

ट—सातवाँ गुण गलन-मिलन-सस्थान। पुद्गल का स्व-भाव गुण है, केवल इसीमें पाया जाता है।

ठ—उपरोक्त दम गुण पर-द्रव्य सम्वन्धित नही है लेकिन ११वाँ गुण पर-उपकार गुण है तथा जीव द्रव्य से सम्वन्धित है। इस गुण के कारण जीव पुद्गल को ग्रहण कर सकता है या कहिये जीव और पुद्गल का वन्ध हो सकता है। दूसरे द्रव्य भी निज-निज स्वभाव के अनुसार जीव का उपकार करते हैं।

हमने पुद्गल के पारिणामिक फलात नियमो का वर्णन परिभाषा में नही किया है क्योंकि पुद्गल के परिणमन करने के नियम "वन्धे

सामाधिकौ पारिणामिकौ च"। (तत्त्वार्थ सूत्र ५।३६) के सिवा अन्य नियम हमारे लक्ष्य में अभी नही आये है। परिणमन से जो पौद्गलिक विचित्रता उत्पन्न होती है उसके नियम जरूर होने चाहिएँ, क्योकि जैन का जगत् सुनियन्त्रित है, विश्रखलित (choas) रूप नही। आधुनिक विज्ञान को भी पारिणामिक कलातो के नियम उपलव्ध नही हुए हैं। उदाहरण—ऑक्सीजन तथा हाईड्रोजन गैसो के वन्ध को प्राप्त होने से फलान्त परिणाम पानी होता है। ऑक्सीजन तथा हाईड्रोजन की प्रापरटीज (गुण) फलान्त पानी की प्रापर्टीज (गुणो) से विल्कुल भिन्न है। वन्धन प्राप्त होकर पूर्व गुणो से विचित्र-विभिन्न गुणो में यह परिणमन किन नियमो से होता है, इस प्रश्न का उत्तर अभी तक हमारे लक्ष्य में जैन-शास्त्रो में नही आया है तथा आधुनिक-विज्ञान को भी इस फलान्त परिणमन के नियम नही मिले हैं।

तृतीय अध्याय

पुद्गल के भेद-विभेद

पुद्गल अनन्त हैं। अनेक अपेक्षाओं से भी पुद्गल अनन्त हैं। द्रव्यत पुद्गल अनन्त हैं[1]। सर्व पुद्गल द्रव्य देश से अनन्त हैं। क्षेत्र देश से भी, काल देश से भी, भाव देश से भी सब पुद्गल अनन्त हैं[2]। इस द्रव्यार्थ से अनन्त पुद्गल के भेद भी अनन्त हैं[3]। यह अनन्त पुद्गल जाति-अपेक्षा से अनन्त प्रकार के हैं[4]। यह अनन्त पुद्गल भावार्थ से भी अनन्त प्रकार के हैं[5]। यह अनन्त पुद्गल पर्यायार्थ से भी अनन्तानन्त प्रकार के हैं क्योंकि पर्याय अनन्तानन्त हैं[6]। अनेकान्तवादी जैन भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से

१–दव्वओ ण पोग्गलत्थिकाए अणताइ दव्वाइ।

—भगवतीसूत्र २ : १० : ५७

२–दव्व देसेण सव्वे पोग्गला सपएसा वि अप्पएसा वि, अणता; खेत्ता देसेण वि एव चेव; काल देसेण वि, भाव देसेण वि एवं चेव। —भगवतीसूत्र ५ : ८ . २

३–अनन्त भेदापि पुद्गला। —राजवार्तिकम् ५ : २५ : ३

४–जात्याधारानन्तभेद ससूचनार्थं बहुवचन (अणव. स्कन्धाश्च) क्रियते। —तत्त्वार्थसूत्र ५ · २५ पर राजवार्तिकम् टीका पद ३

५–भगवतीसूत्र २५ . ४ : ४१

६–भगवती सूत्र २५ : ४ : ६६, प्रज्ञापना सूत्र पद ३।

इन द्रव्यार्य से अनन्त पुद्गलो का कई तरह से भेद करता है। इन अनेक प्रकार के भेदो को मानने में किसी प्रकार से भी परस्पर विरोध या वैषम्य नही आता वल्कि पुद्गल के सव भावो का समन्वय ही होता है। आधुनिक प्रत्यक्ष सिद्धवादी विज्ञान भी वहुत दूर तक इन भेदो को मानता है। जैन-दर्शन की तरह अन्य भारतीय या अभारतीय दर्शनो में पुद्गल के भेद-विभेद विस्तार से या कहिये सक्षेप से भी नही मिलते। जड पदार्थ (पुद्गल) सम्बन्धी इतना विशद विवरण एव नाना अपेक्षाओ से उसकी जानकारी जितनी जैन-दर्शन में मिलती है उतनी अन्य किसी प्राचीन या अर्वाचीन दर्शन में नही मिलती। शव्द, आताप आदि को जो जैनो द्वारा पुद्गल माने गये थे और अन्य दर्शनो द्वारा अवमानित थे, आधुनिक विज्ञान ने भी पुद्गल (Matter) सिद्ध कर दिया है।

पुद्गल के भेदो का सामान्य विश्लेषण

पुद्गल का एक भेद—व्यक्तिगत भाव से सर्व पुद्गल परमाणु हैं। किसी दूसरे पुद्गल के साथ अवद्ध अवस्था में पुद्गल परमाणु रूप हैं[1]। अत परमाणु के स्वरूप की अपेक्षा से पुद्गल का एक ही भेद "परमाणु" होता है। पुद्गल का एकान्त भेद केवल एक परमाणु है। निश्चय नय से सर्व पुद्गल परमाणु हैं।

१—परस्परेणासयुक्ता परमाणव.।
—तत्त्वार्थ सूत्र ५ · २५ के भाष्य पर सिद्धसेन गणि टीका।

परमाणु तथा स्कन्ध[1]—परमाणु—परमाणु परस्पर में बन्धन को प्राप्त होकर जिस समवाय या समुदाय को प्राप्त होते हैं, उसे स्कन्ध कहते हैं[2]। उपर्युक्त व्यक्तिगत परमाणु तथा स्कन्धनामीय परमाणुसमवाय की अपेक्षा से पुद्गल के दो भेद—परमाणु तथा स्कन्ध होते हैं। इसको संक्षिप्त भेद कहा गया है[3]। समवाय रूप में पुद्गल स्कन्ध है तथा भिन्न-भिन्न रूप में परमाणु हैं[4]।

दो भेद—सूक्ष्म तथा बादर—पुद्गल के सूक्ष्म, बादर भेद तीन अपेक्षा से होते हैं यद्यपि फल एक ही होता है। एक अपेक्षा है इन्द्रियों द्वारा ज्ञेयता। वे पुद्गल जो इन्द्रियों द्वारा जाने नहीं जा सकते हैं उनको सूक्ष्म पुद्गल कहते हैं। सर्व परमाणु पुद्गल सूक्ष्म ही होते हैं एवं इन्द्रियों द्वारा अज्ञेय है। स्कन्धों में भी कितने ही प्रकार के स्कन्धों का संगठन (Construction) ऐसा है कि इन्द्रियों द्वारा वे जाने नहीं जा सकते है। उनको भी सूक्ष्म पुद्गल कहते हैं। वे पुद्गल स्कन्ध जो

१—समस्त पुद्गला एव द्विविधा.—परमाणव. स्कन्धाश्चेति।
—तत्त्वार्थ सूत्र ५ . २५ की सिद्धिसेन गणि टीका।

२—स्कन्धास्तु बद्धा एवेतिपरस्पर सहत्या व्यवस्थिता।
—तत्त्वार्थ सूत्र ५ . २५ के भाष्य पर सिद्धिसेन गणि टीका।

३—ते एते पुद्गला समासतो द्विविधा भवन्ति—अणव. स्कन्धाश्च।
—तत्त्वार्थ सूत्र ५ . २४ का भाष्य तथा ५ · २५ सूत्र।

४—एगत्तेण पहुत्तेण, खन्धा य परमाणु य।
—उत्तराध्ययन ३६ · ११

इन्द्रियो द्वारा ज्ञेय हैं उनको वादर पुद्गल कहते हैं। दूसरी अपेक्षा है—स्पर्शता गुण। द्विस्पर्शी, चतु स्पर्शी तथा सूक्ष्म परिणामी अष्टस्पर्शी पुद्गल सूक्ष्म होता है। अवशेप अष्टस्पर्शी पुद्गल स्कन्ध वादर होते हैं। तीसरी अपेक्षा प्रदेशात्मक है। अप्रदेशी वा एक प्रदेशी, दो, दस यावत् सख्यात प्रदेशी, असख्य प्रदेशी, तथा सूक्ष्मपरिणामी अनन्त प्रदेशी पुद्गल सूक्ष्म कहे जाते हैं। अनन्त-प्रदेशी वादर परिणामी पुद्गल स्कन्ध वादर कहे जाते हैं। क्षेत्र—प्रदेश अवगाहना की अपेक्षा से भी सूक्ष्म वादर भेद कहा जा मकता है। निर्णय चारो अपेक्षा से एक ही होता है।

दो भेद—ग्राह्य तया अग्राह्य—पुद्गल जीव के द्वारा ग्रहण किया जाता है तथा परिणमाया भी जा सकता है। लेकिन पुद्गल सब अवस्था में जीव द्वारा ग्राह्य नही हैं। परमाणु पुद्गल जीव द्वारा ग्राह्य नही हैं। द्विस्पर्शी, चतु स्पर्शी पुद्गल-स्कन्ध जीव द्वारा अग्राह्य है। केवल कितनी ही प्रकार का अष्टस्पर्शी पुद्गल स्कन्ध जीव द्वारा ग्राह्य है। इस जीव-ग्राहिता अग्राहिता की अपेक्षा से पुद्गल के ग्राह्य तथा अग्राह्य दो भेद कहे गये हैं।

तीन भेद—(१) प्रयोग परिणत, (२) मिश्र परिणत (३) विस्रसा परिणत[1]। (१) वे पुद्गल जिनको जीवो ने ग्रहण करके परिणमन

१—तिविहा पोग्गला पण्णत्ता-पओग परिणया, मिससा परिणया, विससा परिणया। —भगवती सूत्र ८ . १ : १

किया है उनको प्रयोग परिणत पुद्गल कहते है। आधुनिक विज्ञान इनको 'Organic Matter' कहता है। (२) वे पुद्गल जो जीव द्वारा परिणमित हुए हैं लेकिन अब जीवरहित होकर या जीव द्वारा निर्जरित होकर स्वतः परिणमित हो रहे हैं उनको मिश्र परिणत पुद्गल कहते हैं। जहाँ पुद्गल में —स्थूल समय की अपेक्षा से जीव द्वारा परिणमन तथा स्वकीय परिणमन (Self-transformation or modifications) एक साथ हो रहे हैं वहाँ पुद्गल में मिश्र परिणमन कहा जा सकता है। (३) वे पुद्गल जिनमें स्वकीय अपेक्षा से परिणमन हो रहा है या जिसके परिणमन में किसी जीव का सहाय्य नहीं है उनको विस्रसा परिणत पुद्गल (inorganic matter) कहते हैं।

पुद्गल के चार भेद—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु[1] —पुद्गल के परमाणु तथा स्कन्ध दो भेद बताये गये है। यहाँ स्कन्ध के तीन विभेद (स्कन्ध-देश-प्रदेश) करके तथा परमाणु को मिलाकर चार भेद कहे गये हैं। (१) परमाणुओ के बद्ध-समवाय अर्थात् बन्धन प्राप्त समुदाय को स्कन्ध कहते है। (२) स्कन्ध का वह भाग जो फिर से विभाजित किया जा सके उसको देश कहते हैं। अत द्विप्रदेशी से अनन्त प्रदेशी स्कन्ध विभाग को देश कहते है। (३) जितने परमाणुओ का बन्ध होकर स्कन्ध बना हो

१—जे रूवी ते चउव्विहा पण्णत्ता-खन्ध, खन्धदेसा, खन्धपएसा, परमाणु पोग्गला।   —भगवती सूत्र २ . १० : ६६

उस स्कन्ध के उतने प्रदेश हैं। स्कन्धवद्ध होते हुए भी जो परमाणु प्रमाण निर्विभाज्य स्कन्ध का विभाग है, उसको प्रदेश कहते हैं। अविभाज्य पुद्गल को परमाणु कहते हैं। स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु को स्थूल भाव से इस प्रकार भी वतलाया जाता है। सर्वांश में पूर्ण परमाणुओ के वद्ध समुदाय को स्कन्ध कहते हैं। उस स्कन्ध के आधे भाग को देश कहते हैं। उससे आधे भाग को प्रदेश कहते है। अविभागी भाग को परमाणु कहते हैं।

पुद्गल के ६ भेद—सूक्ष्म सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्म वादर, वादर सूक्ष्म, वादर और वादर वादर[1]। (ग) में पुद्गल के सूक्ष्म वादर ये दो भेद कहे गये हैं। यहाँ इन दो भेदो का विश्लेपण कर ६ भेद कहे गये हैं। (१) सूक्ष्मात् सूक्ष्म-परमाणु (ultimate atom) को सूक्ष्म सूक्ष्म कहा गया है क्योकि प्रथमत यह अन्त्य सूक्ष्म है—इससे सूक्ष्म और कोई पुद्गल नही है। द्वितीयत —इसको प्रत्यक्ष से परमावधिज्ञानी तथा केवलज्ञानी ही जान सकते है। अन्य जीव कार्यलिंग की अपेक्षा अनुमान से जान सकते हैं। (२) उन सूक्ष्म पुद्गल स्कन्धो को जो अतीन्द्रिय (ultrasensual matters) हैं सूक्ष्म कहते हैं। (३) सूक्ष्म-वादर—नेत्र को छोडकर चार इन्द्रियो के विपयभूत पुद्गल स्कन्ध को (ultravisible but intrasensual

---

१—वादर वादर, वादर, वादरसुहुम च सुहुमथूल च।
सुहुम च सुहुमसुहुम च धरादिय होदि छब्भेय॥
—गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ६०२।

रस को मुख्य तथा अन्यो को
गौण मानकर ५ (५+२+८+५)= १०० भेद।
गन्ध को मुख्य तथा अन्यो को
गौण मानकर २ (५+५+८+५)= ४६ भेद।
स्पर्श को मुख्य तथा अन्यो को
गौण मानकर ८ (५+५+२+६+५)=१८४ भेद।
सस्थान को मुख्य तथा अन्यो को
गौण मानकर ५ (५+५+२+८)=१०० भेद।

कुल ५३० भेद।

ये भेद "परिस्थूर" न्याय की अपेक्षा से वताये गये हैं।

जाति अपेक्षा से अनन्त भेद[1]—जाति अपेक्षा से परमाणु पुद्गल तथा स्कन्ध पुद्गल दोनो के अनन्त भेद होते हैं। परमाणु मव एक ही प्रकार के नही होते। वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श के सव उपभेद एक परमाणु में नहीं होते। एक परमाणु में कोई एक वर्ण, कोई एक रस, कोई एक गन्ध तथा (उष्ण-शीत, स्निग्ध-रुक्ष में से) कोई दो अविरोधी स्पर्श होते हैं। जिन परमाणुओ मे एक ही तरह का वर्ण, रस, गन्ध तथा दो स्पर्श हो उन परमाणु पुद्गलो को एक जाति का कहेंगे। इम प्रकार वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श के उपभेदो के सम्भाव्य मयोगो (Combinations) के कारण परमाणु भिन्न-भिन्न जाति के होते है। इसी

१—राजवार्तिकम् ५ : २५ · ३

प्रकार स्कन्ध पुद्गल भी तरह-तरह की जाति के होते है। 'तत्त्वार्थ सूत्र के ५।२५ "अणव स्कन्धाश्च" सूत्र पर टीका करते हुए राजवार्तिक प्रणता ने लिखा है—"उभयात्र जात्यापेक्ष वहुवचनं—अनन्त भेदा अपि पुद्गला अणुजात्या स्कन्धजात्या"। "अणव", "स्कन्धा" इन वहुवचनात्मक शव्दो का व्यवहार इस सूत्र में जाति-अपेक्षा से किया गया है। अणु-जातियो, स्कन्ध-जातियो की अपेक्षा पुद्गल अनन्त भेदवाले होते है। उन्होने आगे लिखा है—"द्वैविध्यमापद्यमान्ना सर्वे गृह्यत इति तदजात्यावानन्त-भेदससूचनार्थं वहुवचन क्रियते"। अणु तथा स्कन्ध इन दो भेदो में सभी पुद्गल ग्रहण हो जाते हैं, लेकिन इन दो भेदो की जातियो के आधार पर अनन्त भेदो को वतलाने के लिए ही मसूचनार्थ ही उपरोक्त तत्त्वार्थसूत्र में वहुवचनो का प्रयोग किया गया है।

भावगुणाश से अनन्त भेद—पुद्गल के वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श धर्मों में शाक्तिक तारतम्यता होती है। जैसे काले वर्णवाले पुद्गलो में कालापन सव में समान नही होता है। कोई एक गुण काला होता है (एक गुणकाला माने सव से हल्का कालापन, जिससे हलका कालापन फिर नही हो सकता है—अविभागप्रतिच्छेदी कालापन)। यह कालापन, ऐकिक (Unitary) होता है। कोई दोगुण काला होता है। कोई दसगुण काला होता है। कोई सख्यात्गुण काला, कोई असख्यात्-गुण काला, कोई अनन्तगुण काला हो सकता है। यह गुणो की तारतम्यता परमाणुओ तथा स्कन्धो दोनो में होती है। इस

प्रकार प्रत्येक वर्ण—काला, नीला, लाल, पीला, सफेद—के गुणाशो की तारतम्यता की अपेक्षा पुद्‌गल के अनन्त भेद होते हैं। इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श के गुणाशो की तारतम्यता की अपेक्षा पुद्‌गल के अनन्त-अनन्त भेद होते है।

पर्याय अपेक्षा से अनन्त भेद—पुद्‌गल परिणामी है। सघात-भेद के निमित्त वन्ध-भेद को प्राप्त होकर पुद्‌गल वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, सस्थान में परिणमन करता है तथा इस प्रकार अनन्त व्यजन पर्यायो को धारण करता है। इन अनन्त पर्यायो की अपेक्षा पुद्‌गल के अनन्त भेद जैसे शव्द, आतप, उद्योत, अन्वकार, पानी, पृथ्वी, वादल आदि होते है।

चतुर्थ अध्याय

परमाणु-पुद्गल

परमाणु—परम अणु अर्थात् सब से छोटा अणु। जिसका विभाग नही हो सके वा जिससे छोटा और कोई नही हो वही परमाणु कहलाता है। परमाणु चार तरह का कहा गया है[1]।

(१) द्रव्य-परमाणु—"पुद्गल परमाणु"। (२) क्षेत्र-परमाणु—"आकाश—प्रदेश।" (३) काल-परमाणु—"समय"। (४) भाव-परमाणु—"गुण"।

भाव परमाणु चार तरह का कहा गया है[2]—वर्णगुण, गन्ध-गुण, रसगुण और स्पर्शगुण।

इसके उपभेद १६ हैं[3] (१)एक गुण काला, (२)एक गुण नीला, (३) एक गुण लाल, (४) एक गुण पीला, (५) एक गुण सफेद, (६) एक गुण सुगन्ध, (७) एक गुण दुर्गन्ध, (८) एक गुण खट्टा, (९) एक गुण मीठा, (१०) एक गुण कड़वा, (११) एक

१—चउव्विहे परमाणू पण्णत्ते-तजहा-दव्व परमाणू, खेत्त परमाणू, काल परमाणू, भाव परमाणू।

—भगवतीसूत्र २० · ५ · १२

२—भगवतीसूत्र २० ५ १६

३—भगवतीसूत्र २० ५ १

गुण कपाय, (१२) एक गुण तीखा, (१३) एक गुण उष्ण, (१४) एक गुण शीतल, (१५) एक गुण रूक्ष और (१६) एक गुण स्निग्ध।

कारण अणु और अनन्त अणु

द्रव्य परमाणु को सामान्य रूप से "परमाणु पुद्गल" या सक्षेप में "परमाणु" कहा जाता है। सर्व पुद्गल निश्चयनय से (From definite aspect) परमाणु हैं। लेकिन परमाणु पुद्गल सदा परमाणु रूप में नही रहता है। अपने गलन-मिलन के स्वाभाविक धर्म के अनुसार दूसरे परमाणु या परमाणुओ के साथ, जीव के व्यापार से (प्रायोगिक) या विना जीव के व्यापार से (वैस्रसिक),—कितने ही नियमो के अनुवर्ती जो वन्ध होता है उससे उत्पन्न स्वरूप को स्कन्ध कहते हैं। इस स्कन्ध में वद्ध परमाणुओ का दल कभी 'भेदात्' किंवा 'सघात् भेदात्'—नियम के अनुवर्ती होकर—फिर निज-निज परमाणु स्वरूप हो सकता है। वन्धन-अपेक्षा से परमाणु पुद्गलो को "कारण-अणु" तथा भेद-अपेक्षा से "अनन्त अणु" (Ultimate Particle) कहा जा सकता है।

परमाणु पुद्गल की परिभाषा

किसी प्रवीण आचार्य ने "परमाणु पुद्गल" की अनुपम सक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार पदवद्ध की है —

"कारणमेव तदन्त्य सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणु ।
एकरस गन्धवर्णो द्विस्पर्श कार्यलिगश्च ॥"

इस पद को श्वेताम्बर-दिगाम्बर—दोनो मतो के आचार्यों ने उद्धृत किया है[1] तथा इस पर टीकाएँ की है। इस पद के अनुसार परमाणु पुद्गल

(१) "कारण है" अर्थात् स्कन्ध पुद्गलो के बनने का कारण या निमित्त है।

(२) "अन्त्य है" अर्थात् स्कन्ध पुद्गलो का भेद करते-करते अन्त में परमाणु निकलता है।

(३) "सूक्ष्म है" अर्थात्—चरम क्षुद्र है।

(४) "नित्य है" अर्थात्—परमाणु का कभी विनाश नहीं होता है[2]। स्कन्ध रूप परिणमन होकर भी इसका व्यक्तित्व (Indviduality) नष्ट नही होता है।

(५) "एक रस गन्ध वर्ण वाला है" अर्थात्—परमाणु के पाँच रसों में से कोई एक ही रस होता है, दो गन्धो में से एक ही गन्ध होता है और पांच वर्णों में से कोई एक वर्ण होता है[3]।

१—तत्त्वार्थ पर सिद्धिसेन गणि टीका ५ २५ । तत्त्वार्थ राजवार्तिकम् ५ २५ १५
२—भगवतीसूत्र १४ ४ ५
३—भगवतीसूत्र १८ ६ ५

(६) "द्विस्पर्शी है" अर्थात्—रूक्ष, स्निग्ध, शीत और उष्ण —इन चार स्पर्शों में से परमाणु मे कोई दो अविरोधी स्पर्श होते है[१]। परमाणु या तो रूक्ष-शीत, या रूक्ष-उष्ण, या स्निग्ध-शीत या स्निग्ध-उष्ण होता है।

(७) "कार्यलिंग है"। परमाणु के सामूहिक कार्यों को देखकर ही इसका अनुमान किया जाता है। परमाणु के धर्मों का भी स्कन्ध पुद्गलो के मूल धर्मों को देखकर अनुमान किया जाता है। साधारण ज्ञान वाले जीव के लिए "परमाणु पुद्गल" उसके कार्यों से ही अनुमेय है[२]। केवल ज्ञानी तथा परमावधि-ज्ञानी ही इसको भाव से जानते व देखते है[३]।

परमाणु पुद्गल के गुण

"परमाणु पुद्गल" अविभाज्य, अछेद्य, अभेद्य, और अदाह्य है[४]। किसी भी उपाय, उपचार या उपाधि से परमाणु का भाग नही हो सकता है। वज्र पटल से भी परमाणु का विभाग या भाग नही हो सकता है। किसी शस्त्र से—तीक्ष्णातितीक्ष्ण से—भी इसका

१—भगवतीसूत्र १८ ६ ५
२—भगवतीसूत्र १८ ८ ७
३—भगवतीसूत्र १८ · ८ ११ तथा १२
४—भगवतीसूत्र २० ५ . १२

क्रमण या भाग नहीं हो सकता है[1]। परमाणु तलवार की धार या उससे भी तीक्ष्ण धारवाले शस्त्र की धार पर रह सकता है[2]। तलवार या क्षुर की तीक्ष्ण धार पर रहे हुए परमाणु-पुद्गल का छेदन-भेदन नहीं हो सकता है या किया जा सकता है। परमाणु पुद्गल अग्निकाय के बीच में प्रवेश करके जलता नहीं है[3]। पुष्कर संवर्त महामेघ के बीच में प्रवेश कर भीगता या आर्द्र नहीं होता है। गंगा महानदी के प्रतिश्रोत में शीघ्रता से प्रवेश कर नष्ट नहीं होता है। उदक वर्त या उदक विन्दु में आश्रय लेकर विलोप नहीं होता है।

"परमाणु पुद्गल" अनर्घ है, अमध्य है, अप्रदेशी है, सार्ध नहीं है, समध्य नहीं है, सप्रदेशी नहीं है[4]। परमाणु पुद्गल का आदि भी नहीं है, अन्त भी नहीं है, मध्य भी नहीं है। यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। परमाणु की न लम्बाई है, न चौड़ाई है, न गहराई है, यदि है तो इकाई रूप है। यह माण्डलिक विन्दु (Spherical point) कहा जा सकता है। परमाणु निरंशी है। यह सूक्ष्मता के कारण स्वयं आदि, स्वयं मध्य, स्वयं ही अन्त है[5]।

१—भगवतीसूत्र ५ · ७ ६
२—भगवतीसूत्र ५ ७ ६
३—भगवतीसूत्र ५ ७ ८
४—भगवतीसूत्र ५ ७ ९
५—सौक्ष्म्यादात्मादय· आत्ममध्या आत्मान्ताश्च।
—राजवार्तिकम् ५ : २५ १

अन्य एक आचार्य ने कहा है

"अत्तादि अत्तमज्झा अत्तते पेव इन्दिएगेज्या।
ज दव्व अविभागी त परमाणु विण्णाणादि ।।

जिसका आदि मध्य अन्त सब एक ही है, जो इन्द्रिय–ग्राह्य नही है, जो अविभागी है, ऐसे द्रव्य को परमाणु जानो।

पुद्गल परिभाषा की कसौटी पर

(१) परमाणु पुद्गल द्रव्य है। इसका नाम ही द्रव्य परमाणु है।

(१क) यह नित्य तथा अवस्थित है क्योकि यह स्कन्ध रूप परिणमन करके भी अपने व्यक्तित्व तथा स्वजाति को परित्याग नही करता है। यह "Law of Conservation of mass" को पालन करता है क्योंकि कोई भी परमाणु नष्ट या विलोप नही होता है तथा न कोई नया परमाणु पुद्गल लोक में उद्भव होता है। जितने परमाणु थे, उतने ही है, उतने ही रहेंगे।

(२) यह अजीव है। जीवत्व के लक्षण-गुण इसमे नही है।

(३) इसका अस्तित्व है। परमाणु पुद्गल का अस्तित्व अनुमेय है।

(४) परमाणु काय नही। वह कायरहित (Massless) है क्योकि यह ऐकिक (Unitary) है। लेकिन दूसरे परमाणु

के साथ वन्ध को प्राप्त होकर कायत्व ग्रहण कर सकता है। अत परमाणु पुद्गल को उपचार से काय वाला कहा जा सकता है।

(५) परमाणु पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण चारो ही होते हैं। लेकिन यह सस्थान-रहित है। इसके आकार को माण्डलिक विन्दु (Spherical point) मात्र कहा जा सकता है। इसकी लम्वाई, चौडाई व गहराई कुछ नही है। द्वि-क्षेत्र-प्रादेशिक वन्धन से ही सस्थान (इस दशा मे आयात) आरम्भ होता है।

(६) परमाणु पुद्गल क्रिया करने में समर्थ है। यह देशान्तर प्रायिणी क्रिया तथा अन्यान्य क्रिया कर सकता है। लेकिन परमाणु पुद्गल की क्रियायें अनियत (Uncertain) हैं।

(७) परमाणु पुद्गल स्वय न गलता है, न भिन्न ही होता है, न विखरता है और न गलन होकर, भिन्न होकर, विखर कर पूरण होता है, मिलता है। लेकिन दूसरे परमाणु या परमाणुओ के साथ मिलकर—समवाय को प्राप्त होकर—फिर भिन्न होता है, उस स्कन्वत्व को छोडकर अलग होता है। परमाणु पुद्गल आत्मभूत रूप मे गलन-मिलनकारी नही है लेकिन परमाणुओ का दल वन्वन-भेद को प्राप्त होता है। अत समवाय रूप में गलन-मिलनकारी है।

(८) परमाणु पुद्गल परिणामी है। अगुरुलघु-भाव में यह स्वय परिणामी है। यह अगुरुलघु परिणमन परमाणु पुद्गल के वर्ण , रस, गन्ध, स्पर्श के गुणाशो में होता है। एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल के साथ बन्धन को प्राप्त होकर पिछले परमाणु के द्वारा परिणमित किया जा सकता है।

(९) परमाणु अनन्त हैं[1]।

(१०) परमाणु की गति अति चपल[2] होने पर भी यह आलोक में जाने में असमर्थ है। लोक में सर्वत्र इसकी गति है तथा लोक में यह सर्वत्र है। अत परमाणु पुद्गल लोक-प्रमाण कहा जाता है।

(११) परमाणु पुद्गल जीव द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता है[3] क्योकि यह अतिसूक्ष्म है। अत आत्मभूत अवस्था में परमाणु पुद्गल जीव का कोई भी उपकार नही करता है और न जीव के परियोग में आता है[4]।

१–भगवतीसूत्र २५ · ४ ३८
२–एक समया लोकान्त प्रापिण।
—भगवतीसूत्र १ ६ ८
३–भगवतीसूत्र २० ५ १३ का ४।
४–भगवतीसूत्र १८ ४ ६

पंचम अध्याय

विभिन्न अपेक्षाओं से परमाणु पुद्गल

नाम-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल को केवल "परमाणु" या "द्रव्य परमाणु" भी कहा जाता है।

द्रव्य-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल "द्रव्य" है, क्योंकि परमाणु पुद्गल के गुण तथा पर्याय दोनों होते हैं।

क्षेत्र-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल अलोक क्षेत्र में नहीं है और न जा सकता है। लोक क्षेत्र में सर्वत्र है। स्वय व्यक्ति भाव से (individually) एकक्षेत्र प्रदेश में है। व्यक्तिगत वह एकक्षेत्र प्रदेश ही रोकता है, दो या अधिक क्षेत्रप्रदेश नहीं रोक सकता है। एकक्षेत्र प्रदेश में दूसरे परमाणु-पुद्गलों के साथ मिलकर भी रह सकता है।

काल-अपेक्षा—परमाणु-पुदगल त्रिकालवर्ती है। अनन्त भूतकाल में था, वर्तमानकाल में भी है, तथा अनागत भविष्यत-काल में रहेगा।

भाव-अपेक्षा—परमाणु-पुदगल में वर्ण, रस, गन्ध, तथा स्पर्श होते हैं। वर्ण, रस, गन्ध, तथा स्पर्श यह चारों परमाणु-पुदगल के भाव कहे गये हैं।

नित्यानित्य-अपेक्षा—परमाणु-पुदगल नित्य है, अनित्य नहीं है।

यह नष्ट विनष्ट नही होता। जितने परमाण-पुदुगल है, उतने ही रहेंगे, उनमें से एक भी, किसी भी कारण से, कम नही होगा और न किमीके द्वारा नष्ट हो सकेगा। वे जितने हैं, उतने ही रहेंगे।

अवस्थित-अपेक्षा—कोई नवीन परमाणु-पुद्गल न स्वत बनेगा, न किसीके बनाये बनेगा। जितने परमाण-पुद्गल हैं, उस सख्या में एक भी वृद्धि, किसी भी कारण से, नही होगी। भूतकाल में भी कोई नया परमाणु नही बना था, वर्त्तमानकाल में भी कोई नया परमाणु नही बनता है और न भविष्यत् काल में कोई नया परमाणु बन सकेगा।

अस्ति-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल "उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त सत्" इस नियम का प्रतिपालक है, अतएव सत्—अस्ति है। केवल कल्पना नही है। परमाणु-पुद्गल विद्यमान है।

रूप-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल रूपी है, अरूपी नही है, क्योकि इसमें वर्ण, रस, गन्ध तथा स्पर्श के भाव होते है तथा अन्य परमाणु के साथ बन्धन को प्राप्त होकर वह सस्थान भाव भी ग्रहण कर सकता है। वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और सस्थान से ही रूप प्रस्फुटित होता है।

आकार-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल आकाररहित है, लेकिन निराकार व अरूपी नही है। यह मात्र माण्डलिक बिन्दु ही कहा जा सकता है। ६ सस्थानो में, परमाणु-पुद्गल का कोई भी सस्थान नही होता है। परन्तु अन्य परमाणु या परमाणु के साथ सघबद्ध होकर आकार का उत्पादक है। दो परमाणु मिलकर आयत आकार धारण कर सकते हैं।

परिणाम-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल परिणामी है। वर्ण, रस, गन्ध, तथा स्पर्श के भावों में परिणामी है। परमाणु-पुद्गल में केवल चार—वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श के—परिणाम होते हैं। संस्थान का परिणमन परमाणु की व्यक्तिगत स्वतन्त्र अवस्था में नहीं होता है, क्योंकि वह आकाररहित है तथा व्यक्तिगत अवस्था में कोई आकार ग्रहण नहीं करता है[1]। व्यक्तिगत अवस्था में परमाणु-पुद्गल भावों के गुणों की वृद्धि-हानि-रूप परिणमन करता है, लेकिन अन्य परमाणु के साथ बन्धन को प्राप्त होकर भावों के रूपभेदों में भी परिणमन करता है। स्व अवस्था में परमाणु में केवल विस्रसा परिणमन ही होता है।

अगुरु-लघु-अपेक्षा—(क) परमाणु-पुद्गल काय-अपेक्षा अगुरु-लघु है। पिण्डहीन तथा प्रदेशहीन है। इससे लघु यानी छोटा या हल्का और कोई नहीं है। यह अगुरु अर्थात् किसी से बड़ा या भारी नहीं है।

(ख) परमाणु-पुद्गल भाव-अपेक्षा अपने भाव-गुणों में व्यक्तिगत अवस्था में अगुरु-लघु है अर्थात् इसके भाव-गुणों की शक्तियों में षट् परिणाम से हानि-वृद्धि होती है। परमाणु-पुद्गल अकेला रहकर भी अपने भाव-गुणों में षट् परिणाम से परिणमन करता है। उदाहरण—एक परमाणु पुद्गल एक-गुण काला है। वह अपने अगुरु-लघु गुण से अनन्त गुण काला हो सकता है तथा

१—भगवतीसूत्र ८ . १० ४

परमाणु-पुद्गल में नही रह सकता है, अत परमाणु-पुद्गल सचित्त नही हो सकता है। लेकिन जीव और परमाणु-पुद्गल एकक्षेत्र प्रदेश में एक साथ रह सकते हैं।

आत्मा-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल के आत्मा होती है। इस 'आत्मा' शब्द का अर्थ जीवात्मा नही है। परमाणु का अपना निज का एक व्यक्तित्व होता है। इसी व्यक्तित्व को यहाँ आत्मा कहा गया है। यह व्यक्तित्व परमाणु-पुद्गल के भावो में प्रस्फुटित होता है। कहा जा सकता है कि परमाणु-पुद्गल का निज का स्वतन्त्र स्वभाव होता है, जो किसी दूसरे परमाणु-पुद्गल से भिन्न होता है। परमाणु-पुद्गल एक आत्मा है[1]।

प्रदेश-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल द्रव्यदेश से अप्रदेशी है[2]। अत क्षेत्रदेश से वह नियम से अप्रदेशी है, काल देश से स्यात् अप्रदेशी है, स्यात् सप्रदेशी है, भाव-देश से भी स्यात् अप्रदेशी है, स्यात् सप्रदेशी है[3]।

क्षेत्रप्रदेश-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल क्षेत्रप्रदेश अपेक्षा अप्रदेशी है—अर्थात् एक ही क्षेत्रप्रदेश को रोकता है। व्यक्तिगत अवस्था में तो एक क्षेत्रप्रदेश रोकता है तथा दूसरे परमाणु के साथ सघवद्ध होकर भी स्वय एक ही क्षेत्रप्रदेश रोकता है, लेकिन समीप के दूसरे

१—भगवतीसूत्र १२ १० १६
२—भगवतीसूत्र ५ ७ · ६
३—भगवतीसूत्र ५ · ८ २

क्षेत्र-प्रदेश में स्थित परमाणु के साथ वन्धन प्राप्त होकर रह सकता है। स्कन्ध में वद्ध परमाणु भी स्वय एक ही क्षेत्रप्रदेश रोकता है, एक से अधिक नही रोक सकता है।

क्षेत्र अवस्थान में सगी—जहाँ एक परमाणु पुद्गल है, वहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश है, अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश है, आकाश का एक प्रदेश है। जीव के अनन्त प्रदेश हो सकते है,—पुद्गलास्तिकाय के भी अनन्त प्रदेश हो सकते है, अद्धा समय का स्यात् अवगाह होता है, स्यात् नही। यदि स्यात् अवगाह हो तो अनन्त अद्धा समय का अवगाह होता है।

ज्ञेयत्व-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल को छद्मस्थ मनुष्यो में कोई जानता है, देखता नही है, कोई जानता भी नही है, देखता भी नही है। छद्मस्थ मनुष्य परमाणु को देख नही सकता। अवधि-ज्ञानी जीवो में कोई जानता है, देखता नही है, कोई जानता भी नही है, देखता भी नही है। अवधिज्ञानी जीव भी परमाणु-पुद्गल को देख नही सकता है। परमावधि ज्ञानी तथा केवलज्ञानी जीव परमाणु-पुद्गल को जानता भी है, देखता भी है, लेकिन जिस समय जानता है उस समय देखता नही, जिस समय देखता है उस समय जानता नही है[1]। परमाणु-पुद्गल अति सूक्ष्म है, साधारण जीव के लिए अनुमेय कहा गया है।

वर्ण-अपेक्षा—परमाणु पुद्गल में पाँच वर्णों में (लाल, पीला,

१—भगवतीसूत्र १८ ८ · ७ और १०, ११, १२

परमाणुओ के साथ बन्धन होने से सुगन्ध वाला दुर्गन्ध में, दुर्गन्ध वाला सुगन्ध में परिणमन कर सकता है। बन्धन भेद से भेद होने पर अपनी स्वाभाविक गन्ध में परिणमन कर लेता है। बन्धन अवस्था में परमाणु की स्वाभाविक गन्ध का विनाश या विलोप नही होता है।

स्पर्श-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल में उष्ण, शीत, रूक्ष, तथा स्निग्ध—इन चार स्पर्शों में से कोई दो अविरोधी स्पर्श होते हैं। अत. परमाणु-पुद्गल या तो (१) उष्ण-रूक्ष, या (२) उष्ण-स्निग्ध, या (३) शीत-रूक्ष या (४) शीत-स्निग्ध होगा। परमाणु-पुद्गल में हलका-भारी स्पर्श नही होता, क्योकि यह अगुरु-लघु होता है और न परमाणु-पुद्गल में कठोर-नरम स्पर्श होता है, क्योकि ये दोनो स्थूल स्कन्ध में ही सम्भव है। उष्ण, शीत, रूक्ष, तथा स्निग्ध की शक्ति एक गुण से अनन्तगुण तक की हो सकती है।

जाति-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गलो की, भावगुणो की विभिन्नता के कारण, अनेक जातियाँ होती हैं। ५×५×२×४२०० मूल जातियाँ होगी तथा भावगुणो के शक्ति-गुणो की तारतम्यता से अनन्तानन्त जाति भेद होगे[1]। पहला उदाहरण—एक परमाणु-पुद्गल काला है, सुगन्धवाला है, मीठा है, उष्ण तथा रूक्ष है। दूसरा परमाणु-पुद्गल लाल है, लेकिन अवशेष ऊपरवाले परमाणु की तरह है। पहले परमाणु जैसे भाव गुणवाले अनेक परमाणु

१—तत्त्वार्थ राजवार्त्तिकम्।

कल्पना भी नही हो सकती। परमाणु-पुद्गल दो प्रदेशी पुद्गल-स्कन्ध को ७वें या ९वें भागे से स्पर्श करता हैं। परमाणु-पुद्गल तीन प्रदेशीय पुद्गल-स्कन्ध को ७वें, ८वे या ९वें भागे से स्पर्श करता हैं। जिस प्रकार तीन प्रदेशीय स्कन्ध को स्पर्श करता है, उमी प्रकार ४, ५, यावत् अनन्त-प्रदेशीय स्कन्ध को उसी ७वें, ८वें या ९वें नियम से स्पर्श करता है[1]।

द्रव्य-स्पर्शता-अपेक्षा—एक परमाणु-पुद्गल को अन्य द्रव्यो के कितने प्रदेश स्पर्श कर सकते है, या यो कहिये, परमाणु पुद्गल अन्य द्रव्यो के कितने प्रदेशो को स्पर्श कर सकता है ? एक परमाणु-पुद्गल अधर्मास्तिकाय के जघन्य पद मे ४ तथा उत्कृष्ट पद में ७ प्रदेशो को स्पर्श करता है। अर्थात्-एक परमाणु-पुद्गल जिस क्षेत्र-प्रदेश में है, वहाँ अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश होता है तथा एक परमाणु-पुद्गल के ६ तरफ (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व तथा अधोदिशाओ में) ६ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हो सकते है। अत परमाणु-पुद्गल उत्कृष्ट में अधर्मास्तिकाय के ७ प्रदेशो को स्पर्श कर सकता है। लेकिन लोकाकाश के कोने में परमाणु-पुद्गल के तीन ही तरफ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हो सकते हैं,इसलिए जघन्य में परमाणु-पुद्गल को अधर्मास्तिकाय के चार प्रदेश स्पर्श कर सकते है। एक क्षेत्र-प्रदेश में साथ में अवगाह करनेवाले अधर्मास्तिकाय के प्रदेश को परमाणु-पुद्गल उपर्युक्त ९वें भागे

११–भगवतीसूत्र ५ ७ १३

से स्पर्श करता है। लेकिन अपने ६ तरफ ६ दिशाओ में अवस्थित अधर्मास्तिकाय के प्रदेशो को किस भागे से स्पर्श करता है, यह ठीक समझ में नही आता। एक क्षेत्र-प्रदेश तथा अन्य क्षेत्र-प्रदेश के मध्य में कोई खालीपन या फाँक या अन्तर नही होता है। इसलिए सलग्न में अवस्थित दो विन्दुओ में जो स्पर्श होता है, वही स्पर्श सलग्न अवस्थित अधर्मास्तिकाय के प्रदेश के साथ परमाणु-पुद्गल का होना चाहिए। निरांशी में अश या देश की कल्पना करना व्यर्थ है।

इसी तरह परमाणु-पुद्गल धर्मास्तिकाय के जघन्य पद में ४ तथा उत्कृष्ट पद में ७ प्रदेशो को स्पर्श करता है। वह आकाशास्ति-काय के जघन्य या उत्कृष्ट दोनो मे ७ ही प्रदेशो को स्पर्श करता है, क्योकि आकाशास्तिकाय सर्वत्र है। वह जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेशो को स्पर्श करता है, क्योकि एक क्षेत्र-प्रदेश में जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेश अवगाहन कर सकते है[1]।

यदि परमाणु-पुद्गल अद्धा समय के साथ स्पर्श करे, तो अनन्त अद्धा समय के साथ स्पर्श करता है[2]।

क्रिया तथा गति-अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल क्रियावान् है तथा गतिशील है। सर्वदा ही क्रियावान या गतिशील है, ऐसी बात नही है। कभी क्रिया करता है, कभी नही भी करता[3]। इसकी

१—भगवतीसूत्र १३ ४ २३
२—भगवतीसूत्र १३ ४ ३६
३—भगवतीसूत्र ५ ७ १

क्रियायें आकस्मिक होती हैं[१]। परमाणु-पुद्गल की क्रियायें अनेक प्रकार की होती हैं। भगवती सूत्र ५।७१ मे "कभी कम्पन करता है, कभी विविध कम्पन करता है" पद के वाद यावत् परिणमन (क्रिया) करता है, इस प्रकार लिखा है (सिय एयति सिय वेयति जाव परिणमति)। "जाव" शब्द के व्यवहार से स्पष्ट है कि परमाणु-पुद्गल "एयति" "वेयति" के सिवा अन्य क्रियाएँ भी करता है। क्रियाओ के भेद सूत्रो मे विस्तार से नहीं मिलते है। टीकाकार अभयदेव सूरि ने भी "क्रिया" के भेदो को खोज कर सग्रह करने को कहा है—(भगवती ३।३ की टीका)। परमाणु-पुद्गल एक क्षेत्र-प्रदेश मे जाने की देशान्तरगामी क्रिया भी कर सकता है। परमाणु-पुद्गल कम्पन-क्रिया करते-करते देशान्तरगामी क्रिया भी कर सकता है। देशान्तरगामी क्रिया कम्पन आदि अन्य क्रियायो के साथ हो सकती हैं[२]। अव प्रश्न उठता है कि एक ही क्षेत्र-प्रदेश में अवगाहन करता हुआ परमाणु-पुद्गल कैसी कम्पन-क्रिया कर सकता है। प्रचलित में कम्पन शब्द का जो अर्थ लिया जाता है, वह अर्थ घूजना यहाँ काम्य नही हो सकता है, क्योकि उसमे क्षेत्र-प्रदेश से चलन होता है। अत एक क्षेत्र-प्रदेश में ही रहते हुए परमाणु-पुद्गल आवर्तन-क्रिया ही कर सकता है, लेकिन यह आवर्तन धुरीहीन होना चाहिए, क्योकि परमाणु मे धुरी की कल्पना नही

१—भगवतीसूत्र ५ . ७ पर अभयदेव सूरि टीका।
२—भगवतीसूत्र ५ : ७ · १७

हो सकती है। "षड्द्रव्यस्पर्शता" में परमाणु-पुद्गल की ६ दिशायें स्थापित की गयी है, क्या उसी तरह धुरी की स्थापना की जा सकती है? इस विषय में विशेष खोज की आवश्यकता है।

परमाणु-पुद्गल की कम्पन आदि क्रिया समित (समिय) तथा अनियमित भी हो सकती है। यहाँ यह नियमितता या अनियमितता क्षेत्र-समय सापेक्ष है।

परमाणु-पुद्गल में क्रिया या गति स्वत (विस्रसा) हो सकती है अथवा अन्य परमाणु-पुद्गल या स्कन्ध-पुद्गल के सयोग से हो सकती है। एक पुद्गल में दूसरे पुद्गल के सयोग-प्रयोग से जिस क्रिया एव गति की उत्पत्ति होती है, उसे विस्रसा कहते है। जीव के निमित्त से जो क्रिया और गति पुद्गल में होती है, उसे प्रायोगिक क्रिया व गति कहते है। लेकिन परमाणु-पुद्गल में जीव के निमित्त से कोई क्रिया और गति नही हो सकती, क्योकि परमाणु-पुद्गल जीव द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता तथा पुद्गल को ग्रहण किये बिना पुद्गल में परिणमन कराने की शक्ति जीव में नही है। अत परमाणु-पुद्गल में जो क्रिया व गति होती है, वह विस्रसा ही होती है।

परमाणु-पुद्गल की क्रिया और गति की तेजी कितनी होती है? कम्पन आदि क्रियाओ की चाल के सम्बन्ध में कोई उल्लेख सूत्रो में अभी तक दृष्टिगोचर नही हुआ है, लेकिन देशान्तरगामिनी क्रिया यानी गति-क्रिया के सम्बन्ध में भगवतीसूत्र (१६ ८ ७) में कहा है कि परमाणु-पुद्गल लोक के पूर्व चरमान्त से पश्चिम चरमान्त,

पश्चिम से पूर्व चर्मान्त, उत्तर से दक्षिण, दक्षिण से उत्तर, ऊर्ध्व चरमान्त से आधोचरमान्त तक एक समय में जा सकता है। यह हुई परमाणु-पुद्गल की उत्कृष्ट गति। उसकी जघन्य गति होगी एक समय में एक आकाश-प्रदेश से मलग्न अन्य आकाश-प्रदेश में जाना।

परमाणु-पुद्गल की गति अणु-श्रेणी की होती है, अणु-श्रेणी अर्थात् मरल-रेखा। एक समय (काल की इकाई) में जितना देशान्तर हो, चाहे वह एक लोकान्त से दूसरे विपरीत लोकान्त तक का ही क्यो न हो, सरल रेखा मे ही होगा (तत्त्वार्थसूत्र भाष्य)। विग्रह होने से, एक से अधिक समय लगेगा। विग्रह पर प्रयोग से ही होता है—(तत्त्वार्थसूत्र २ २७ पर सिद्धिसेन गणि टीका)।

क्रिया व गति अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल की क्रिया व गति कितनी ही अपेक्षाओ से नियत है तथा कितनी ही अपेक्षाओ से अनियत है। लेकिन मुख्य रूप से अनियत है, इसीलिए तत्त्वार्थ राजवार्तिककार ने परमाणु की गति को अनियत कहा है (परमाणोर्गति अनियता)।

नियत नियम—

(१) देशान्तरगति सरल रेखा में होगी।

(२) विग्रह होने से अर्थात् गति में वक्रता होने से अन्य पुद्गल का प्रयोग आवश्यक है।

(३) परमाणु की गति में जीव प्रत्यक्ष कारण नही हो सकता।

(४) जघन्य चाल एक समय में एक प्रदेश का देशान्तर,

उत्कृष्ट चाल, एक समय में एक लोकान्त से विपरीत लोकान्त तक का देशान्तर है।

(५) गति व क्रिया स्वत भी कर सकता है तथा अन्य पुद्गल के प्रयोग से भी कर सकता है।

अनियत नियम —

(१) स्थिर—निष्क्रिय-परमाणु-पुद्गल किस समय गति व क्रिया आरम्भ करेगा—यह अनिश्चित है। एक समय से लेकर असंख्येय समय के भीतर किसी समय में भी क्रिया व गति आरम्भ कर सकता है। लेकिन असंख्यात् समय के उपरान्त निश्चय ही गति व क्रिया आरम्भ करेगा।

(२) गतिमान—सक्रिय परमाणु-पुद्गल कब गति व क्रिया बन्द करेगा—यह अनियत है। एक समय से लेकर आवलिका के असंख्यात् भाग समय के भीतर किसी समय भी क्रिया व गति बन्द कर सकता है। लेकिन आवलिका के असंख्यात् भाग समय के उपरान्त निश्चय ही गति व क्रिया बन्द करेगा।

(३) देशान्तर-गति आरम्भ करने से यह किस दिशा में गति आरम्भ करेगा, यह अनियत है। स्वत गति आरम्भ करने से यह किसी भी दिशा में गति कर सकता है। पर पुद्गल-प्रयोग से गति करने से किस दिशा में गति करेगा, इसके नियम अभीतक हमको उपलब्ध नहीं

हुए हैं।

(४) गति व क्रिया आरम्भ करने से यह किस प्रकार की गति व क्रिया करेगा—यह भी अनियत है। यह कम्पन करेगा, आवर्तन करेगा, या देशान्तर करेगा, या कम्पन तथा देशान्तर एक साथ करेगा—यह अनियत है।

(५) गति व क्रिया आरम्भ करने से कितनी मन्द या तेज चाल से गति करेगा, यह भी अनिश्चित है। एक समय में एक प्रदेश की देशान्तरवाली चाल ग्रहण करेगा या एक समय में लोकान्तप्रापीणि चाल ग्रहण करेगा या इनकी मध्यवर्ती कोई चाल ग्रहण करेगा, यह भी अनियत है।

उपर्युक्त ५ अनियतो के सम्बन्ध मे सूत्रो में या सिद्धान्त-ग्रन्थो में हमें कोई विशद विवेचन नजर नही आया, खोज जारी है।

प्रतिघाती–अप्रतिघाती अपेक्षा—परमाणु-पुद्गल अप्रतिघाती हैं। अप्रतिघाती अर्थात् जिसको कोई प्रतिहत नही कर सकता है, बाधा नही दे सकता है, तथा रोक नही सकता है।

अप्रतिघातित्व के चार रूपक हो सकते है —

(१) देशान्तर गति में रुकावट न होना,

(२) जहाँ अन्य हो, वहाँ जाकर अनके साथ अवस्थान कर सकना,

(३) जहाँ अन्य हो, वहाँ रह कर उन अन्यो से निरपेक्ष

क्रिया कर सकना और

(४) अन्यो के साथ अवस्थान करते हुए वहाँ मे विना किसी रुकावट के देशान्तर कर सकना।

परमाणु-पुद्गल में ये चारो रूपक सम्भव है। अत परमाणु-पुद्गल अप्रतिघाती है। गतिमान या क्रियावान परमाणु-पुद्गल किसी अन्य पुद्गल, किसी जीव, किसी अन्य द्रव्य से रोका नही जा सकता है। गतिमान परमाणु-पुद्गल सबके भीतर से गति करता हुआ निकल जाता है। जहाँ अन्य पुद्गल या जीव या अन्य द्रव्य है, उसी आकाश-प्रदेश में जाकर वह अवगाह कर सकता है। परमाणु-पुद्गल अन्यो के साथ अवगाह करता हुआ, निरपेक्ष भाव से कम्पन आदि क्रिया कर सकता है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख कही नहीं मिला है। लेकिन ऐसा होना सम्भव है।

पूर्ण स्वतन्त्रता और अप्रतिघातित्व

परमाणु-पुद्गल निज में अप्रतिघाती है तथा दूसरो के प्रति भी अप्रतिघाती है अर्थात् दूसरो को भी प्रतिहत नही करता है।

इस प्रकार परमाणु-पुद्गल पूर्ण स्वतन्त्र है, जब जो इच्छा हुई, सो की, उसे कोई रोकने वाला नही है। लेकिन पूर्णता मे नजर लगने का डर रहता है, इसलिए परमाणु-पुद्गल ने अपनी स्वतन्त्रता में, अपने अप्रतिघातित्व में, तीन अपवाद लगा रखे है अर्थात् तीन अवस्थाओ में परमाणु-पुद्गल ने प्रतिहत होना स्वीकार कर रखा है। निम्नलिखित तीन अवस्थाओ में परमाणु-पुद्गल

प्रतिहत होता है। सिद्धिसेनतत्त्वार्थ टीका —

(१) धर्मास्तिकाय के अलोक में नही होने से, उपकार के अभाव में, लोकान्त में जाकर परमाणु-पुद्गल प्रतिहत हो जाता है, अलोक में नही जा सकता है।

(२) अन्य परमाणु-पुद्गल या स्कन्ध-पुद्गल के साथ सघात को प्राप्त होकर स्निग्धता, रूक्षता नियमो के अनुसार उन परमाणु-पुद्गलो या स्कन्ध-पुद्गल के साथ वन्धन को प्राप्त होकर, प्रतिहत होता है, अपनी स्वतन्त्रता, नियत् काल के लिए, खो देता है।

(३) विस्रसा परिणाम से वेग से गति करते हुए परमाणु-पुद्गल का यदि किसी दूसरे विस्रसा परिणाम से वेग से गति करते हुए परमाणु-पुद्गल से आयतन सयोग हो, तो वह परमाणु-पुद्गल निज में भी प्रतिहत हो सकता है तथा दूसरे परमाणु को भी प्रतिहत कर सकता है। अटकावेगा ही या अटकेगा ही, ऐसा नियम नही मालूम होता है।

उपर्युक्त प्रतिघातो के क्रम से ये तीन नाम है—(१) उपकाराभाव-प्रतिघात, (२) वन्धन-परिणाम-प्रतिघात, और (३) गति-वेग-प्रतिघात।

प्रतिघातो का विवेचन

परमाणु-पुद्गल की गति मे धर्मास्तिकाय अवलम्बनात् उपकारी

है। परमाणु-पुद्गल को क्रिया या गति करने में धर्मास्तिकाय का अवलम्बन लेना होता है। इस अवलम्बन के विना गति व क्रिया करने की सामर्थ्य रहते हुए भी परमाणु-पुद्गल गति व क्रिया नही कर सकता है। धर्मास्तिकाय लोकक्षेत्र में ही है, अलोकक्षेत्र में नही है, निष्क्रिय तथा अचल होने से लोक से अलोक में नही जा सकती है। अत परमाणु-पुद्गल परमवेग की एक समया लोकान्तप्रापिणी गति करते हुए भी लोकान्त में आकर प्रतिहत हो जाता है, रुक जाता है। (२) सघात से बन्धनप्राप्त परमाणु-पुद्गल अन्य परमाणु या परमाणुओ के साथ समवाय मे रहता है तथा समवाय में ही गति व क्रिया करता है। इस प्रकार अपनी स्वतन्त्र अवस्था से प्रतिहत होता है। परमाणु की यह प्रतिहतता ही जगत की दृश्यमान विचित्रता का कारण है। (३) वेग प्रतिघात के सम्बन्ध में विशेप विवरण अभी तक कही पर नजर नही आया है। इस विपय में निम्नलिखित प्रश्न अवस्थापित होते है —

(१) प्रतिहत होने लायक वेग की शक्ति कितनी होनी चाहिए ?

(२) क्या जघन्य वेग में प्रतिघात होता है ?

(३) क्या दोनो परमाणुओ की वेग-शक्ति का समान होना आवश्यक है ?

(४) क्या गति में विग्रह होना प्रतिघात माना जा सकता है?

(५) क्या असमान वेग-शक्ति होने से एक परमाणु प्रतिहत होगा तथा दूसरा अधिक वेग-शक्तिवाला गति करता ही

रहेगा, या दोनो ही गतिहीन हो जायँगे, या दोनो ही गतिवेग-ह्रास करके गति करते रहेंगे और यह गतिह्रास प्रतिघात होना माना जायगा ?

(६) वेग से गतिमान परमाणु-पुद्गल आयतन सयोग होने पर छिटक कर सयोग क्षेत्र से दूर जाकर रुकेंगे या सयोग-क्षेत्र में ही प्रतिहत होकर रहेंगे।

शायद और भी प्रश्न अवस्थापित हो सकते है।

इस वेगप्रतिघात से निम्नोक्त नियम निकलता है —

"गतिमान परमाणु-पुद्गल को यदि गति करते हुए कोई वेग से गतिमान परमाणु-पुद्गल या पुद्गल नही मिले, तो वह प्रतिहत नही होता है।"

इस प्रकार परमाणु-पुद्गल में प्रतिघाती-अप्रतिघाती परस्पर-विरोधी भावो का होना माना गया है। आधुनिक विज्ञान ने भी पदार्थ (Matter) में इस प्रकार के प्रतिघाती-अप्रतिघाती विरोधी भाव होने माने तथा दिखलाये है। उदाहरण स्वरूप—एक्सरे की किरणें अनेक प्रकार के स्थूल पदार्थों से अप्रतिघाती है, रुकती नही है, लेकिन शीशे की मोटी चादर से प्रतिहत हो जाती हैं। यह आशिक तुलनात्मक उदाहरण है। साइक्लोट्रन यन्त्र में होनेवाली क्रियाओ में शायद पूर्ण तुलनात्मक उदाहरण मिल मके।

पञ्चम अध्याय

परिभाषा के सूत्र

*१—पूरणाद्गलनाद्पुद्गल इति सज्ञा।

२—पुगिलानाद्वा। —राजवर्तिकम्

*३—पुद्गल. द्रव्यम्।

(क) गुणपर्यायवद् द्रव्यम्। —तत्त्वार्थसूत्र

(ख) द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा। —तत्त्वार्थसूत्र

(ग) भावान्तर सज्ञान्तर च पर्याय। —तत्त्वार्थसूत्र भाष्य

*(घ) सहभाविनो धर्मा गुणा।

*(च) क्रमभाविनो धर्मापर्याय।

४—नित्यावस्थिता अजीवा।

(क) तद्भावाव्ययम् नित्यम्। —तत्त्वार्थसूत्र

*(ख) न न्यूनाधिकमवस्थितम्।

*(ग) अनाद्यनिधन च।

(घ) जीवादन्योऽजीव। —सिद्धिसेन गणि तत्त्वार्थ टीका।

(च) जीवो न भवतीत्यजीव।

—सिद्धिसेन गणि तत्त्वार्थ टीका

---

* जहाँ इस तरह के स्टार चिह्न हैं, वे सूत्र लेखक के स्व-निर्मित हैं।

*५–सदस्तिकायाश्च।

(क) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्। —तत्त्वार्थसूत्र

(च) कालत्रयाभिधायी अस्ति।

—अभयदेव सूरि भगवती टीका

(ग) काय प्रदेशराशय।

—अभयदेव सूरि भगवती टीका

६–रूपिण पुद्गला। —तत्त्वार्थसूत्र

*(क) न वर्णमात्र रूपम्।

*(ख) स्पर्शरसगधवर्णसमवायात् रूपम्।

७–मूर्ताश्च।

(क) वर्णादिसस्थानपरिणामो मूर्ति। —राजवार्तिकम्

८–अरूपा पुद्गला न भवन्ति।

—सिद्धिसेन गणि तत्त्वार्थ टीका

९–स्पर्शरसगधवर्णवन्त पुद्गला। —तत्त्वार्थसूत्र

*१०–पूर्यन्ते गलन्ति च पुद्गला.।

११–पुद्गलजीवास्तु क्रियावन्त·। —तत्त्वार्थसूत्र भाष्य

(क) परिस्पन्द लक्षणा क्रिया।

—प्रवचनसार प्रदीपकावृति

१२–सामर्थ्यात् सक्रियो। —तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम्

१३–परिणामिनौ जीवपुद्गलौ। —द्रव्यसंग्रह टीका